R.N.I.No.-CHHHIN16015/33/1/2014-TC डाक पं

सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति ए

संपादकीय कार्यालयः–

'बस्तर पाति'

सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,
जगदलपुर, जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001
मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

जल्दी ही इंटरनेट पर–www.paati.bastar.com

मूल्य पच्चीस रूपये मात्र अंक–1,जून–अगस्त 2014

सहयोग राशि–साधारण अंकः पच्चीस रूपये पंचवर्षीयः पांच सौ रूपये मात्र, संस्थाओं एवं ग्रंथालयों के लिएः एक हजार रूपये मात्र. सारे भुगतान मनीआर्डर/ड्राफ्ट ***सनत कुमार जैन*** के नाम पर संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजें या फिर स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के खाता क्रमांक **10456297588** में भी बैंक कमीशन जोड़कर सीधे जमा कर सकते हैं.

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक सनत कुमार जैन द्वारा सन्मति प्रिन्टर्स जगदलपुर से मुद्रित एवं सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर के लिए प्रकाशित

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से बस्तर पाति, संपादक मंडल या संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है. रचनाकारों द्वारा मौलिकता संबंधी लिखित/मौखिक वचन दिया गया है. संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक. समस्त विवाद जगदलपुर न्यायालय के अंतर्गत.

प्रधान संपादक
सनत कुमार जैन
संपादक मंडल
श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस', नागपुर, 09028978535
शशांक श्रीधर, जगदलपुर, 09424290567
महेन्द्र जैन, कोण्डागांव, 09424291637
विशेष सहयोगी
विजय बोरकर, 09406293344
शब्दांकन
अनूप जंगम, 09755792997
मुख पृष्ठ एवं रेखांकन
नरसिंह महान्ती, जगदलपुर, 09009454895

सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपनी रचनाएं कृतिदेव 14 नंबर फोण्ट में एवं एक्सेल, वर्ड या पेजमेकर में ईमेल से ही भेजने का कष्ट करें जिससे हमारे और आपके समय एवं पैसों की बचत हो। रचना में अपनी फोटो, पूरा पता, मोबाइल नंबर एवं ईमेल आईडी अवश्य लिखें।

पाठकों से रूबरू/2
पाठकों की चौपाल/5
बहस–साहित्यिक थ्रीलर/7
काव्य/एस.एस.त्रिपाठी/11
बहस/शास्त्र बनाम लोक/12
बहस/नायक एवं खलनायक(एक)/14
काव्य/शशांक श्रीधर/15
बहस/नायक एवं खलनायक(दो)/16
नवहस्ताक्षर/बढ़ते कदम/कु.पूजा देवांगन/कु.सुचिता झा/17
ग़ज़ल/शमीम बहार/18
साक्षात्कार/रऊफ़ परवेज़/19
ग़ज़ल/रऊफ़ परवेज़/22
लघुकथायें/रऊफ़ परवेज़/23
कहानी/रऊफ परवेज़/26
काव्य/महेन्द्र जैन/28
बस्तरनामा/भरत कुमार गंगादित्य/29
काव्य/श्यामनारायण श्रीवास्तव/31
काव्य/डॉ.शैलेष गुप्त/श्रीमती सोनिका कवि/32
काव्य/जयप्रकाश राय/33
काव्य/श्रीमती जयश्री शेण्डे/34
काव्य/रानू नाग/35
काव्य/कु.चंद्रकाति देवांगन/नलिन श्रीवास्तव/36
काव्य/श्रीमती अनसुईया वर्मा/37
बस्तरनामा/राजीव रंजन/38
कहानी/वर्षा रावल/42
काव्य/डॉ.राजाराम त्रिपाठी/43
समीक्षा/मैं बस्तर बोल रहा हूं/44
कहानी/वासू/46
परिचर्चा/श्रीमती शांती तिवारी/48
नवहस्ताक्षर/बढ़ते कदम/महेश बघेल/49
परिचर्चा/श्रीमती वंदना राठौर/50
कहानी/योगेन्द्र राठौर/51
संस्मरण/55
संस्मरण/श्रीमती कुसुमलता सिंह/56
हाइकू/श्रीमती रजनी साहू/57
आओ हाइकू लिखें/58
लघुकथा/रवि यादव/59
नक्कारखाने की तूती/60
साहित्यिक उठापटक/62
कविता कैसे बदले तेरा रूप/63
फेसबुक वॉल से/64

पाठकों से रूबरू

आज का समय ज्ञान उलीचने का है. पर उपदेश कुशल बहुतेरे. इस ज्ञानार्पण में थूक उड़ाना ही होता है. इस थूक उड़ाऊ धंधे में प्रत्येक ज्ञान बांटने वाला, उस ज्ञान के व्यवहारिक उपयोग से खुद ही अछूता रहता है. चूंकि आज की सोच ही बन गई है कि किसी भी बीमारी के ऊपरी लक्षण का इलाज करो और दौड़ते रहो. तह में जाकर मूल समस्या की विवेचना करना मूर्खता का पर्याय बन गया है. जो डॉक्टर बीमारियों का इतिहास पूछता है तो हम ही सोचते हैं, डॉक्टर पागल है क्या ? भारतीय समाज के वर्तमान दुखों का कारण हमारा; हमारी जीवन शैली को त्याग कर पाश्चात्य शैली को अपनाना है. यह भी ठीक है यदि पूर्ण रूप से पाश्चात्य जीवन शैली को अपना लिया जाये और भारतीय जीवन शैली को त्याग दिया जाये. आज हम इस समय को संक्रमणकाल का नाम दे रहे हैं जबकि रमणकाल बना हुआ है. इस काल में दोनों जीवन शैलियों को अपने आनंद के लिए ही उपयोग में लाया जा रहा है, बगैर गुण दोषों की जॉच किये.

किसी भी जीवन शैली का विकसित होना स्थान विशेष की जलवायु, पर्यावरण और वहॉ उपलब्ध संसाधनों से प्रभावित होता है. ये कारक वहां के व्यक्तियों की दिनचर्या से लेकर भोजन–पानी तक को सुनिश्चित करते हैं. इस जीवन शैली में परिवार के प्रति कर्तव्य बोध बना रहता है. समय के साथ–साथ यह जीवनचर्या विकसित होती हुई संस्कृति में बदल जाती है. यानि संस्कृति उस स्थान के इतिहास का वर्तमान होती है. आज जिसे हम पाश्चात्य संस्कृति कहते हैं वह पश्चिम की औपनिवेशिक विस्तारवाद के कारण विकृत स्वरूप पाई हुई संस्कृति है. विदेशों में जाकर गुलाम बनाने के लिए अपनाये हथकंडों ने स्वच्छंदता, अतिरंजित सेक्स और परिवार के प्रति गैर जिम्मेदार व्यवहार ही विकसित किया. धीरे–धीरे यह उपाय बनकर अपनी घटिया सोच को फैलाने का जरिया बना, जिसके फलस्वरूप किसी भी देश की संस्कृति को समूल नष्ट कर गैर जिम्मेदार और स्वार्थी समाज अपने फायदे के लिए बनाया गया.

संस्कृति के इस विनाश के चलते परिवार को तोड़ने की कोशिश शुरू की गई थी. यानि मनुष्य की सामाजिकता को तोड़ा गया. उसे अकेला बनकर खुश होने, रहने की ट्रेनिंग दी जा रही है. जबकि यह मानव के प्राकृतिक स्वाभाव के विरूद्व है; इसलिए हमारे देश के लोग रह–रहकर पुराने संस्कारों की ओर देखते हैं. वे जब परेशान होते हैं तो उन्हें अपनी सभी समस्याओं का हल अपनी संस्कृति में ही नजर आता है.

गुलाम मानसिकता बढ़ाने में नौकरी की महती भूमिका रही है. नौकरी के चलते लोग अपनी जीवन शैली का त्याग करने लगते हैं, कुछ मजबूरियों के चलते तो कुछ वहॉ का अंधानुकरण करके. कल्पना करें, यदि देश के समस्त खेतों पर पूंजीपतियों का कब्जा हो जाये और खुदरा बाजार पूरा का पूरा पूंजीपतियों के अधीन हो जाये तो क्या होगा ? देश का हर आदमी नौकर हो जायेगा. किसान की परिभाषा बदल जायेगी. वह फलानी कंपनी का एग्रीकल्चर टेक्नीशियन बन जायेगा और दुकानदार बन जायेगा सेल्स एक्जीक्यूटीव. आदि–आदि. इस स्थिति में लोग अपने पुरातन संस्कार/संस्कृति जीवित रख पायेंगे ?

चलिए दूसरे शब्दों में समझने की कोशिश करें. खेत का मालिक किसान अपनी खेती से जुड़े तीज–त्यौहार साल भर मनाता है, जब वह नौकरी करने लगेगा तो स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस और गांधी जयंती मनायेगा. इन त्यौहारों की भावना अच्छी है पर ये त्यौहार निबटाये जाते हैं, मनाये नहीं जाते. किसान को खेत की भूमि पर कदम रखने पर वह आनंद महसूस होगा जो आज उसे होता है ? क्या वह नौकरी करते हुये गाय का दूध निकालते वक्त, गाय को मां के समान मानेगा ? (गाय को मां मानना धर्म के अलावा व्यवहार भी है. उसका दूध हम सब पीते हैं इस दृष्टि से मां ही होती है) जो दुकानदार आज व्यापार के चलते दीपावली, नवाखाई जैसे त्यौहार मनाता है, नौकरी करता हुआ इन भावनाओं को महसूस कर पायेगा ?

हमारे देश की संस्कृति को तोड़ने का प्रयास न जाने कितने दुष्परिणाम ला रहा है. कुछ तो सीधे–सीधे दिखाई पड़ते हैं और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ते हैं पर गहरे घाव पैदा कर रहे हैं. आधुनिकीकरण ने उंगलियों में गिन सकने वाले लाभ देने के बाद मात्र नुकसान ही किया है. छुआछूत मुक्ति, स्त्री शिक्षा आदि सुखद परिणाम देने के बाद उसने हमे जड़ से ही उखाड़ फेंका है. पहले गांवों को तोड़ा, समुदाय को तोड़ा, संयुक्त परिवार को तोड़ा और अब पति–पत्नी और बच्चों को भी अलगाया जा रहा है. इसके दुष्परिणाम दिख रहे हैं. हम ही झेल रहे हैं फिर भी अनदेखा कर रहे हैं. कुछ ही लोग मजबूर हैं. लगभग पूरे के पूरे जान समझकर ऐसा कर रहे हैं. एक साथ रहना हमने सीखा ही नहीं तो सहिष्णु बनें कैसे ? परिवार की पाठशाला का ढांचा ही टूट चुका है जिसके माध्यम से मनुष्य बनाये जाते थे और संवेदनायें भरी जाती थीं. परिवार के बीच बीता हर पल एक संस्कार बन जेहन में टंकित हो जाता था. जिसमें चिड़ियों की पहचान, रंगों की पहचान, फूलों के नाम, पेड़ पौधों

की पहचान, कीट पतंगों की पहचान, संबंधों की जानकारी और आपसी व्यवहार की रूपरेखा यूं ही समझ आ जाती थी जिसे आजकल स्कूलों में पढ़ाया जाता है, बच्चों को ज्ञानी बनाने के नाम पर.

पति–पत्नि और एक ही बच्चा फिर भी तीनों आपस में एक घंटे, दो घंटे ही मिलते हैं. बच्चा– आया, नौकर, दोस्तों ट्यूशन के भरोसे जीवन के संस्कारों की रूपरेखा बनाता चलता है. यूं लिखी संस्कारों की किताब के सहारे वह अपना जीवन जीता है. उसके ऐसे बचपन से अपने बूढ़े मां–बाप के प्रति संवेदनायें पनप पायेंगी ? क्या वह भी अपने बूढ़े मां–बाप के लिए पैसे खर्च करके वृद्वाश्रम में यही व्यवस्था नहीं करेगा!

गांवों में अब भी कुछ–कुछ संयुक्त परिवार हैं और खुशहाल हैं. रोग–बीमारी, मुसीबत की दशा में बच निकलते हैं. सभी का मिला जुला प्रयास उन्हें जीवंत बनाता है. वे जीवन के मजे लेते हुये जीते हैं न कि मशीन बने हुये. उनके बीच गीत–संगीत, नृत्य, मेल–मिलाप सभी कुछ तो है. आधुनिक जीवन शैली का पर्याय इस वक्त खूब पैसा कमाना, खूब सारी बेमतलब की चीजें जरूरी समझकर खरीदना और यौन मुक्ति की चाह रखना. लोगों के बीच घूमते रहने पर तो यही महसूस होता है कि वे पैसा इसलिए ही कमा रहे हैं कि अच्छी लड़की फांस लें या किसी दूसरी महिला को आकर्षित कर अपना बनाने का प्रयास करें. दुनिया पैसे और विपरितलिंगी को पाने के प्रयास के बीच ही सिमट गयी है.

भीड़ के बीच भी अकेलापन सदा ही हावी रहता है, क्यों ? क्योंकि हमने संस्कार ही वैसे पाये हैं. साथ रहना जानते नहीं, साथ रह पाते नहीं और अकेलेपन में कुढ़ते, डरते हैं. एक समय था जब लोग अपने शहर से बाहर कहीं घूमने जाते थे तो वहां अपने शहर का आदमी मिलते ही एक विशेष संबंध बना लेते थे और आज! आज तो पहचानते ही नहीं, पहचान ढूंढ़ने की कवायद ही बेकार की बात है. खुदा न खास्ता पहचान मिल भी गयी तो छिपते हैं. कहीं वह मिल गया तो खायेगा. यूं आत्मसंतुष्ट होने की प्रवृत्ति धीरे–धीरे अवसाद में बदल जाती है. चिड़चिड़ापन, अनजाना भय निरंतर हावी रहता है. सामाजिक, सामुदायिक और पारिवारिक टूटन ने अपनों का भय खत्म करके निरंकुश बना दिया है. जब किसी को किसी से मतलब ही नहीं है तो वह क्यों लिहाज करे. एक समय था जब टाकिज में फिल्म देखने जाते थे तो घुप्प अंधेरे में भी अड़ोसी–पड़ोसी मोहल्ले वालों, रिश्तेदारों और शिक्षकों के मिल जाने का भय होता था. और आज! आज तो घर में ही टीवी पर चूमाचाटी मां–बाप, बेटा–बेटी साथ में देख लेते हैं. लोग करें तो क्या करें, जायें तो कहां जायें, गिनकर तीन से पांच प्राणी घर में.

आधुनिकता का मदमस्त हाथी भारतीय सामाजिक ढ़ांचा बेरहमी से रौंदता हुआ चल रहा है. उस हाथी को पालने वाले जरा भी कंट्रोल नहीं करना चाहते हैं बल्कि उसके रौंदने से होने वाले सामाजिक नुकसान से फायदा उठा रहे हैं. उकसा रहे हैं कि हाथी और उत्तेजित हो. शिक्षा के नाम पर परिवार से समाज से लोग कट गये हैं. सुबह से रात तक शिक्षा, शिक्षा और शिक्षा. शिक्षा अन्य मानवीय संस्कारों की तरह जीवन यापन में सहायक है न कि वह ही सबकुछ है. सुबह छै बजे से सोकर उठने नाश्ता बनाने से लेकर स्कूल भेजने तक, फिर दोपहर को स्कूल से आने के बाद ट्यूशन पढ़ाने तक, होमवर्क कराने तक शिक्षा का ही चिन्तन चलता रहता है. इस शिक्षा में दादा–दादी, नाना–नानी में से किसी एक के लिए भी जगह नहीं है. कैसा पारिस्थितिक तंत्र विकसित किया जा रहा है ? क्या घर के बुजुर्ग अपने बच्चों को नैतिक शिक्षा नहीं देते हैं ?क्या वे बच्चों को कहानियों, कविताओं के माध्यम से ज्ञान–विज्ञान, व्यवहार नहीं सिखाते हैं ? बच्चों को यदि कोई संवेदनशील बनाता है तो वह है घर का बुजुर्ग. जिसके साथ रहकर बच्चा सुख–दुख, बीमारी आदि समझता है. जीवन की सच्चाई का सामना घर के बुजुर्गों से ही होता है. घर के बुजुर्ग ही होते हैं जो मां–बाप की व्यस्तता में बच्चों पर नियंत्रण कर समाज को नियंत्रित करते हैं. उनकी रोक–टोक, बच्चों पर नजर, बच्चों को संस्कारित करने के साथ ही साथ उनकी उपयोगिता भी बनाये रखती है.प्रकृति में उगे पेड़ की, फल दे चुकने के बाद भी अपनी छांव, पत्तों, लकड़ियों और औषधीय गुणों से उसकी उपस्थिति पारिस्थितिक तंत्र में बनी रहती है तो फिर क्या घर के बुजुर्गों की उपस्थिति वृद्वाश्रम, अस्पताल की नर्सों–डाक्टरों, घर के कोनों, गंधाते कमरों, अकेलेपन की उपयोगिता सिद्व करने के लिए ही होती है ?

संयुक्त परिवार के अन्य सदस्य चाचा–चाची, बुआ, कज़िन की उपयोगिता न के बराबर है ? ये सभी परिवार बनकर साथ रहते थे भले ही झगड़े होते थे पर काम तो वही आते थे. क्या इस संयुक्त परिवार की ताकत टूट जाने के बाद मनुष्य एकदम अकेला नहीं हो गया है ? समाज में व्याप्त भ्रस्टाचार से लेकर अन्य बुराईयों में इस अकेलेपन ने सहयोग नहीं किया है? 'मै अकेला क्या कर सकता हूं' या 'अकेले को तो सभी डराते हैं' या फिर 'मिलकर कुछ करने से बात बनती' या 'फलाना व्यक्ति देखता रहा पर बचाने नहीं आया' आदि जुमले लोगों की जुबान में क्यों आते हैं ?

अंत में दो बुराईयों पर ध्यान दिलाना चाहूंगा. मनुष्य के एकाकी हो जाने से दो विशिष्ट सामाजिक परिदृष्य उभरे हैं–एक अपरिपक्व उम्र में यौन संबंध और दूसरा युवकों के भीतर अवसाद. अपरिपक्व उम्र में यौन संबंध के भीतर पढ़ने की उम्र में प्रेम संबंध और युवकों द्वारा बलात्कार की स्थितियां भी शामिल हैं. संयुक्त परिवार होने पर घर का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे पर नजर एवं नियंत्रण रखता था. उनकी पहचान के लोग भी गाहे बगाहे नियंत्रण रखते ही थे. अब तो तीन से पांच सदस्यीय परिवार ऊपर से सभी को कमाना है तो कौन रखे नजर? पढ़ने की उम्र में लड़के–लड़कियां प्रेम में उलझे रहते हैं और अपना भविष्य चौपट करते रहते हैं. घर में व्याप्त अकेलापन बच्चों को प्रेम संबंध के लिए उकसाता है. बगैर सही गलत जाने कच्ची उम्र का प्रेम लड़कियों के लिए ही ज्यादा नुकसानदायी होता है क्योंकि भारतीय समाज का ढांचा ही ऐसा है.

दूसरा है युवकों में अवसाद. पढ़ाई के बाद नौकरी ही करना है, इस बात का दबाव खासकर युवकों को अवसादग्रस्त कर देता है. दसवीं–बारहवीं में नंबर कम आने पर आत्महत्या की ओर चला जाता है. बेरोजगार रहने पर अवसादग्रस्त हो जाता है क्योंकि वह अकेला है उसकी भावनाओं को कौन समझे ? संयुक्त परिवार में विभिन्न कार्यों से जुड़े सदस्यों में वह भी रहकर कुछ कर ही लेता है. पर एकल परिवार में नौकरी न मिलने पर दशा खराब हो जाती है.

ऐसा महसूस होता है कि भविष्य में समाज करवट फिर से करवट लेगा और संयुक्त परिवार की ताकत को समझेगा. शिक्षा को नौकरी से जोड़ने की जगह रोजगार या व्यवसाय से जोड़ना साथर्क होगा. इस शिक्षा को, जो प्रकाश बनकर राह दिखाती है–दावानल बनाकर घर–परिवार, समाज और देश जलाना बेवकूफी है, इसे सोचना होगा. पुराने ढ़ांचे में सुधार की अपेक्षा नया ढांचा तैयार करना जरूरी है जो हमारे सामाजिक परिवेश के अनुकूल हो. अंत में यह याद रखना भी जरूरी है कि मानव के लिए रोटी, कपड़ा और मकान ही जरूरी हैं और शाश्वत सच भी.

बस्तर पाति के प्रवेशांक ने अपेक्षा के विपरीत जबरदस्त प्रतिसाद दिया. जिनके पास पत्रिका पंहुची उन्होंने इसका बारीकी से अध्ययन किया और अपनत्व के साथ अपने कुछ सुझाव भी प्रेषित किये. सभी आदरणीय जनों के सुझाव सर आंखों पर. सभी सुझावों पर शीघ्र ही ध्यानपूर्वक यथासंभव व्यवहार में लाने का प्रयत्न रहेगा.

समस्त सुझावों को रेखांकित न करते हुए मैं एक बात कहना चाहूंगा कि हम सब पत्रिकाओं के वर्तमान प्रचलित स्वरूप को देखते हुए उसे ही पत्रिका प्रकाशन की गाइडलाइन मान बैठते हैं जबकि ऐसा कुछ भी नहीं है. प्रयोगधर्मिता का बने रहना ही प्रगतिशीलता का सूचक है. ध्यान से देखने पर पाते हैं कि कुछ पत्रिकायें जरा–जरा सा परिवर्तन करती रहती हैं अपनी पत्रिका की विशेष पहचान बनाये रखने के लिए. हमारा भी यही प्रयास है. बस्तर क्षेत्र से पत्रिका निकालना भी स्वयं में एक प्रयोग है. चूंकि बस्तर पिछड़ा क्षेत्र है, त्रुटिहीन टाइपिंग कार्य करने वाले की घोर कमी है और फिर सीमित साधन में पत्रिका प्रकाशित करना है. क्षेत्रीय रचनाकारों को ढूंढ़ना ही अपने आप में एक काम है. साहित्यिक पत्रिका मार्केट भी बहुत छोटा सा है. कुछ साहित्यकार होते हैं जो पत्रिका खरीदकर ही पढ़ते हैं वरना एक छुटभैय्या साहित्यकार जो साहित्य की गली में कदम रखा है वह भी अपने को विद्वान मानता है और खरीदकर पढ़ना अपनी तौहीन. ऐसी दशा में आर्थिक समझौते करने होते हैं. कुछ का इस पर भी कहना था कि ऐसी दशा है तो पत्रिका निकालने की जरूरत भी क्या है, वैसे भी देश भर में अनेक पत्रिकायें प्रकाशित हो रहीं हैं. आप क्यों बेमतलब परेशान हो रहे हो. पर क्या अनेक राज्यों से बड़े बस्तर संभाग के साहित्यकारों, साहित्यप्रेमियों की आवाज लगातार देश के अन्य हिस्सों में नहीं पंहुचनी चाहिए ? क्या सुविधाओं के अभाव में प्रयास नहीं करने चाहिए ? क्या आलोचनाओं से घबराकर चुप बैठ जाना चाहिए ? क्या पहले ही अंक से श्रेष्ठ रचनायें प्राप्त हो जाती हैं ? क्या एक ही दिन में लोग पत्रिका का उद्देश्य समझ जायेगें ? क्या नामी–गिरामी साहित्यकारों को छापना ही पत्रिका प्रकाशन है ?क्या नये लोगों को छापना स्तरहीनता है ? क्या नास्टेलिया, अति उत्तर आधुनिकता आदि जैसे मायावी शब्दों से खेलना ही साहित्यकर्म है ? क्या होता है साहित्य का उद्देश्य–वैचारिक संप्रेषण या व्याकरण दोष से रहित, साज–सज्जा से युक्त सामग्री ? पत्रिका का उद्देश्य ही है कि नये लोगों को मौका मिले. अंत में आप से अनुरोध है कि पंचवर्षीय सदस्य बनकर आप भी एक सार्थक कार्य में सहयोगी बनें.

नसीहतें हजार मिलीं, दिल से लगाया उन्हें/देने वाले जो दिल के करीब थे.
गुरबतें हजार मिलीं, धुंआ सा फैलाया जिसने/देने वाले जो दिल से गरीब थे.

आपका ही
सनत

पाठकों की चौपाल

बस्तर पाति का अंक–1 पढ़ने का सुअवसर मिला. चौंसठ पृष्ठों का सुंदर आवरण के साथ सुशोभित अंक प्रथम दृष्टया आकर्षक लगा. काव्य, हायकू, लघुकथा, साक्षात्कार, कहानी, ग़ज़ल सभी विधाओं का सुंदर अंकन, संयोजन कर सुंदर सम्पादन हुआ है. हमारा मानना है कि पत्रिका अंचल की पकड़ के साथ उनकी जीवन शैली को समेटते हुए एक आंदोलन को प्रवाहित करने का आग्रह करे तो साहित्य के क्षेत्र में वह निश्चित ही अपना मुकाम प्राप्त करेगी. बधाई!

बहस में आपने मिथकों के माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित करने का संकेत दे ही दिया है तो कथा में तकनीक के सवाल उठा जीवन की जटिलता को प्रतिकृति बनाम अनुकृति की एक नयी बहस भी छेड़ दी है, जो होनी भी चाहिये, लेखकों के मध्य. यूं तो सभी रचनायें श्रेष्ठ हैं परन्तु 'दीया जलता रहा' बी.एस.धीर जी की कहानी पत्रिका की धरोहर कहानी है.सभी रचनाकारों, संपादक मंडल व आपको बधाई.

श्री नरेन्द्रसिंह परिहार, संपादक 'दिवान मेरा', 04,उत्कर्ष अनुराधा, सिविल लाइन, नागपुर, मो.–09561775384

आदरणीय नरेन्द्रजी, आपका बहुत–बहुत धन्यवाद. आपने बड़ी मेहनत से पत्रिका का अध्ययन किया एवं प्रतिक्रिया प्रेषित की. आपके अमूल्य सुझाव पर जरूर अमल किया जायेगा. हमारा तो प्रयास ही है कि पत्रिका क्षेत्र का दर्पण बने.

सनत जैन

आपकी भेजी पत्रिका 'बस्तर पाति' प्राप्त हुई. इस साहित्यिक प्रयास के लिए आपको हार्दिक बधाई. आपकी लिखी संपादकीय पढ़ी, बहुत अच्छी लगी, खरी है पर सही है. सभी ग़ज़लें एवं लघुकथायें अच्छी लगीं. पत्रिका के माध्यम से बहिन उषा अग्रवाल को प्रणाम प्रेषित है. उनके हाइकू अच्छे लगे. कमलेश्वर साहू एवं श्रीमती सुषमा झा की कवितायें बहुत अच्छी हैं. आप बधाई के पात्र हैं आपके इस साहित्यिक अभियान में देखिये एक दिन एक कारवां आपके साथ होगा–बेहिचक चलते रहिये.

कृष्णमोहन 'अम्भोज', नर्मदा निवास, न्यू कालोनी, पचोर–465683 जिला–राजगढ़ मो.–07566695910

आप के द्वारा प्रेषित 'बस्तर पाति' का प्रवेशांक प्राप्त हुआ. स्मरण के लिए आभार. प्रवेशांक को पढ़ने से पत्रिका के भविष्य की उम्मीदें जगती हैं. आवरण पत्रिका के उद्देश्यानुरूप, मुद्रण संतोषप्रद, एवं चयन, संपादन अत्युत्तम. बधाई एवं शुभकामनायें.

अशोक 'आनन' 61/1, जूना बाजार, मक्सी–465106 जिला–शाजापुर मो.–09977644232

'बस्तर पाति' का प्रवेशांक प्राप्त हुआ. आपके प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ. मुख पृष्ठ के चितेरे बंशीलाल विश्वकर्मा जी को साधुवाद. रचनाओं का चयन सुरूचिपूर्ण है. रऊफ परवेज़ की ग़ज़लें उम्दा हैं. सुरेश तिवारी एवं ऊषा अग्रवाल जी के हाइकू पसन्द आये. उर्मिला आचार्य जी की कहानी 'एक था एनकू सोनार ' विशेष पसन्द आई.

एक सुझाव अवश्य देना चाहूँगा, यदि आप अन्यथा न लें तो. आप पृष्ठ को दो कालम में विभाजित करें. लम्बी पंक्तियॉ पढ़ना उबाऊ होता है. कहानी का नाम सबसे ऊपर बोल्ड तथा बड़े फांट में दें. उसके तुरंत नीचे लेखक का केवल नाम दें. लेखक का पूरा पता मय मोबाइल नम्बर के रचना के अन्त में छोटे फांट में दें. आपका प्रयास श्लाघनीय है. मेरी शुभकामनाएं.

डॉ0 रघुनन्दन चिले, 232, मागंज वार्ड नं0:1,दमोह म0प्र0 470661, मो.–9425096088

आपकी पत्रिका 'बस्तर पाती' मिली, धन्यवाद. मैं राजनांदगांव का वासी हूँ. मेरे शिक्षकीय पेशे के शुरुआती दिनों में सन् ;1976–80, तक बस्तर के जगरगुण्डा में रहने का सौभाग्य मिला. उन दिनों मैंने काफी कविताएं लिखीं. आशा करता हूं पत्रिका अविराम प्राप्त होती रहेगी.

नलिन श्रीवास्तव,वार्ड नंबर–32 ब्राहमण पारा, राजनांदगांव छ.ग.,मो–07587160610

आपकी पत्रिका 'बस्तर पाती' मिली, धन्यवाद. आपने बड़ी मेहनत से पत्रिका तैयार की है. कवर एवं मटेरियल दोनो ही अच्छा है. संपादकीय अच्छा है, उसके माध्यम से पत्रिका का उद्देश्य समझा दिया है. शुभकामनायें एवं बधाई. (फोन पर)

थानसिंह वर्मा, गली नंबर–2, वार्ड नंबर–4 शांति नगर, राजनांदगांव छ.ग.,मो–09406272857

स्नेही स्वजन, सप्रेम नमस्कार

बस्तर पाति प्रथमांक प्राप्त हुआ, आपकी पूरी टीम के सार्थक प्रयास को नमन, साधूवाद. अपनी संस्कृति, कला एवं साहित्य को प्रश्रय देने एवं प्रसारित करने के इस अथक प्रयास को मेरी शुभकामनायें.

बस्तर के सरस जन जीवन, बस्तरिया स्वभाव एवं भावनाओं से ओत प्रोत '**एक था एनकू सोनार**' ने सर्वाधिक प्रभावित किया. सुश्री उर्मिला आचार्य को मेरी बधाई. लाला जगदलपुरी की पुण्य स्मृतियों को समेटे हरिहर वैष्णव जी द्वारा लिया **साक्षात्कार** प्रेरणादायी है. आदरणीय लाला जी के रचना संसार की झलक हम नये रचनाकारों के लिए मार्गदर्शी है. इस प्रथमांक के सभी प्रतिभागी रचनाकारों को उनकी रचनार्धमिता के लिए मेरी शुभकामनायें.

मुखपृष्ठ के सजीव गुण्डाधर के चित्र से चित्रकूट जल प्रपात तक बस्तर की महक से रची बसी **बस्तर पाति** निरंतर प्रगति के सोपान चढे. एक बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ कि क्या यह जान बूझ कर किया गया है कि पत्रिका के नाम में 'पाति' शब्द लिया गया है चूकि मेरे विचार से 'पत्र' के अर्थ मे सही शब्द **पाती** होना चाहिए. पत्रिका के संदर्भ मे एक और अनुरोध है कि प्रथम पृष्ठ मे अनुक्रमणिका एवं द्वितीय में संपादकीय विवरण देने से पत्रिका का कलेवर और सुंदर हो जायेगा.

पुनःश्च शुभकामनाओं के साथ ,,,

अखिल रायजादा, 20/265, रामनगर, सिम्स के पास, बिलासपुर. छ.ग. 495001

प्रिय श्री सनत कुमार जैन

शुभकामनायें

आज दिनांक 16.04.2014 को डाक द्वारा **बस्तर पाति** साहित्य को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका मुझे प्राप्त हुई जिससे प्रेरित होकर खत लिखने बैठा हूं. **बस्तर पाति** आई है जिसके मुख पृष्ट पर श्री बंशीलाल विश्वकर्मा द्वारा उकेरा गया गुण्डाधूर का चित्र देखकर ''आकृति'' की याद आ गई. जहां घंटो बैठा करते थे. सूरज ,चांद , सितारों के माध्यम से सारे जहां की बातें किया करते थे. जगदलपुर छोड़े हुए छःसाल होने वाले हैं पर कभी भी भूला नही हूं. जनाब रऊफ परवेज़ , नूर जगदलपुरी , श्री ऋषि शर्मा 'ऋषि' की ग़ज़ले अच्छी लगी. और भी अच्छी रचनाएं पढ़ने को मिली. पाति शब्द मे अपनापन लगता है इसीलिए मैं कहता हूं कि **बस्तर पाति** के माध्यम से –

'' खत लिखने की परम्परा फिर से डालो यार. बातें टेलीफोन की हाय हलो बेकार.''

बस्तर पाति पत्रिका साहित्य और कला के विकास के साथ–साथ जन–जन की समस्याओं को उठाने में एक मील का पत्थर बने. आज अपनी ही कविता मुझे याद आ गयी कि–

'' हॅसते हुए नयनों को रुलाती हैं चिट्ठियां, आने में भी जब भी देर लगाती हैं चिट्ठियां.
परदेश में यही है सहारा हर एक का, अपने वतन की याद जगाती हैं चिट्ठियां.''

मैं चाहता हूं कि **बस्तर पाति** साहित्यिक पत्रिका त्रैमासिक से मासिक बने. सबका अनवरत सहयोग मिले. एक कठिन कार्य सरल हो जाये. अपनों का सन्देशा **बस्तर पाति** के माध्यम से मिलता रहे. पुनः मेरी शुभकामनाओं के साथ.

आपका भ्रातवत् जयप्रकाश राय, दलदल सिवनी शिवाजी नगर, मोवा, रायपुर, मो0 94242–80776

लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित हिन्दी पत्रिका 'बस्तर पाति' प्राप्त हुई. हार्दिक आभार. इस प्रथम अंक को आपने इस प्रकार संजोया है कि प्रतीत होता है, बहुत पुरानी पत्रिका है. कहानी, कविता, लघुकथा, के साथ–साथ ग़ज़ल, हायकू, बहस, यात्रावृतांत, संस्मरण, साक्षात्कार, साहित्यिक उठापटक आदि सबकुछ तो है इस पत्रिका में. सभी रचनायें पढ़ीं. सम्पादकीय टीम के साथ सभी रचनाकारों को हार्दिक बधाई.

सम्पादकीय में आपने लघु पत्रिका एवं पाठक व लेखक के बीच कई संबंधों पर वाजिब बात कही है.

मैं बहुत दिनों तक पत्रिका 'मण्डप' का संयोजक रहा जिसके तहत बहुत पत्रिकायें मंगाता था. मैं चाहता हूं कि लेखक व पाठक पत्रिका खरीदकर पढ़ें. पत्रिकाओं के प्रति मुफ्तख़ोरी बंद होनी चाहिये.

श्याम नारायण सिन्हा, बी.एफ.–1 जिन्दल स्टील एण्ड पावर लि., रायगढ़, छ.ग. मो.–9827477442

श्री श्याम नारायण सिन्हा जी एवं श्री नलिन श्रीवास्तव जी ऐसे पाठक एवं रचनाकार हैं कि जो बगैर आग्रह के ही पंचवर्षीय सदस्य बन गये और सदस्यता शुल्क भेज दिया. आप लोग ही हैं जिनसे उत्साह बढ़ता है. धन्यवाद.–सनत जैन

साहित्यिक थ्रीलर

साहित्यिक पठनीयता का संकट, भाषा की समस्या सम्बंधी चुनौती जैसी आज महसूस की जा रही है, वैसी चुनौती और संकट पहले हमने नहीं देखा है. एक सर्वे के मुताबिक दुनिया में लगभग सात हजार भाषाएं / बोलियां बोली जाती है. जिनमें लगभग पांच हजार भाषाएं/बोलियां लुप्तप्राय हैं. लिखित या प्रकाशित शब्दों पर निःसंदेह एक गंभीर संकट है, क्योंकि फिर भाषा–बोली को बोलना और सुनना एक समस्या होगी और इस, तथ्य को हम अपने आस–पास देख सकते हैं. हमारी भाषा हिन्दी दुनिया की बड़ी संख्या में बोले जाने वाली भाषाओं में से एक है– मगर बाजार के प्रभाव में इसके रूप–स्वरूप में आ रहे परिवर्तन भी गौर किए जाने योग्य हैं. लिखित भाषा एक प्रामाणिक दस्तावेज हैं–अपने समय का, अपने भाषा स्वरूप का. ऐसा नहीं है कि भाषा या बोली या संस्कृति में बदलाव लक्षित नहीं होते हैं–या मातृबोली में बाहरी भाषा का घुल–मिल जाना एक संकट है, बल्कि संकट यह है जब भाषा का मानक रूप, उसका सौंदर्य, उसकी परंपरागत विशिष्टताएं हमारे आचार–व्यवहार से निष्कासित हो जाए. प्रेमचंद के समय में लिखी या बोली जाने वाली भाषा आज नहीं है, पिछले दस साल पूर्व लिखी–बोली जाने वाली भाषा में आज खासा अंतर दिखाई दे रहा है. इंटरनेट और 'फेसबुक' जैसी सोशल साइट का प्रभाव स्पष्ट दिखता है.

जब–तक हमारी लोकबोलियां, लोककथाएं, लोकगीत इत्यादि की परम्परा छिन्न नहीं होती भाषा का संकट ऊपरी तौर पर ही लक्षित होगा. लेकिन ज़मीनी साहित्यिक धरोहर के कमजोर होने का अर्थ ही है– भाषा का संकट!

साहित्य और वह भी अपनी मातृभाषा से युवाओं का पृथक होना निश्चित ही दुःखद है. आज युवा–पीढ़ी, खासकर मध्यमवर्ग पढ़ने, लिखने और सोचने के लिए अंग्रेज़ी का सहारा ले रहा है. हिन्दी उसके लिए सिर्फ 'कम्यूनिकेट' करने की भाषा है, फिल्म देखने की, फिल्मी गीत गाने भर के लिए. यह सोच–विचार या शोध की भाषा नहीं. साहित्य कितने लोग पढ़ते हैं– यह आंकड़ा किसी संपादक या प्रकाशक के पास नहीं है. हां, उन्हें यह जरूर मालूम होगा कि लैटिन अमेरिका में कौन सा साहित्यिक आंदोलन होनेवाला है (अभी हुआ नहीं है).

कभी–कभी हिन्दी साहित्य का पाठक होने के नाते सोचना पड़ता है कि क्या यही वो हमारी हिन्दी है जो हिन्दी फिल्मों में बोली जाती है– मुम्बईया, कोंकणी टोन से लेकर इधर पूर्वी–भोजपुरी टोन तक और हमारा मनोरंजन करती है. तमाम दक्षिण के सुपरस्टार से लेकर कैटरीना कैफ तक सभी हिन्दी बोलना सीख लेते हैं और इसी हिन्दी की बदौलत वे करोड़ो कमाती/कमाते हैं.

फिर, हिन्दी कमज़ोर कैसे ? ना हिन्दी में पाठकों का पता चलता है ना लेखकों की रॉयल्टी का! अजीब विडंम्बना है! सत्य क्या है, या भ्रम ही भ्रम.....!

मगर आश्चर्य नहीं जो परिवेश यहॉ है– साहित्यिक दुनिया में. आश्चर्य तो तब होता है जब हिन्दी लेखक, प्रकाशक, संपादक, विचारक सभी संतुष्ट दिखते हैं. देखा जाए तो जब तक अपनी कमियों की तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता, या हम अपनी तुलना अन्य से नहीं करने लगते, असंतुष्टि का विचार नहीं आता. हम संतुष्ट क्यों हैं यह समझ के परे है. (शायद छोटे–छोटे ग्रुप बनाकर हम अत्यंत सक्रिय हैं– वाह! वाह! करते हुए! हर ग्रुप का अपना–अपना क्रांतिकारी लेखक/लेखिका हैं– भले पाठक न हो...)

इस कुंए से तभी निकलने की सोची जा सकती है जब हम अपनी दशा पर शर्म महसूस करें. (मगर कमबख़्त शर्म है कि हमें आती नहीं!)

खैर.....!

यह संकट किसी एक का संकट नहीं. बात सिर्फ लेखकों, प्रकाशकों तक ही सीमित नहीं, सवाल वृहत निकाय, स्वाभिमान, परम्परा, अपनी भाषा और अपनी सोच का भी है. कोई एक उपाय, कोई एक जादू की छड़ी भी नहीं कि घुमाया और 'रोग' दूर. ...!

हमारे पास साहित्य में पाठकों का संकट न भी हो तो भी बदलते युग में और 'चैटिंग' और 'फेसबुक' में समाती युवा पीढ़ी जो कल इस मिट्टी की धरोहर है– उसकी सोच, उसकी संस्कृति का संकट अवश्य है. युवा पीढ़ी कहां जा रही है या कि वह पूरी तरह अपनी धारा से कट गई? वह कैसा मानव या कैसा नागरिक होने जा रही है. एक टाईधारी सैल्समैन ? एक कोट धारी सेल्स–एक्सेक्यूटिव जिसका काम अपने लोगों के बीच लालची कॉरपोरेट वर्ल्ड के उत्पाद बिकवाना भर है ? मध्यमवर्ग

की उर्जा तो वहीं जा रही हैं और ऐसा करते हुए हम सिर्फ उन्हें 'देख' रहे हैं. बड़े तटस्थ भाव से. साधु भाव से. मजा कि हम लेखक व विचारक हैं. बौद्धिक हैं. कवि–कथाकार हैं.

युवा पीढ़ी बेशक कॉरपोरेट वर्ल्ड के लिए नौकरी करे, (फिलहाल क्या विकल्प हो सकता है ?) मगर अपनी सोच अपनी तो हो. वे जाने कि 'हम' क्या हैं ? हमारी परंपरा क्या हैं. हमारी विरासत कहॉ से चली आ रही है ?

हमारी परंपरा में बहुत सारी बुराइयॉ भी हैं – जात–पात छुआछूत इत्यादि– वे इस माडर्न जीवन में हमसे छूट जाएं तो उत्तम! पर, परम्परा के निर्वाह में, आधुनिकता के चक्कर में..., इसे कौन स्वीकार करेगा. वे प्रबुद्ध लोग भी नहीं जो कुंए में जी रहे हैं. (सच तो ये है कि कुंए में जाना भी एक आवश्यकता है, क्योंकि बाहर मजबूत साहित्यिक लठैत लाठी में तेल लगाकर बैठे हैं. आ जा बेटा! तेरे सर पर दूं एक गिनकर....,गंवार के लाठी कपारे बीच, कि बेटा कभी उठ ही न पाओ...)

सोचना पड़ता है कि आखिर वो कौन सी ताकत है जो गोरी कैटरीना को हिन्दी बोलने पर मजबूर करती है, बड़े प्रोड्यूसरों को महाभारत और रामायण पर फिल्में या टेली–फिल्में बनानी पड़ जाती है. बहुत सारी लोककथाओं पर सीरियल बनाए गये हैं.

हिन्दी करोड़ों लोगों की भाषा है मगर आश्चर्य कि इसका (साहित्यिक) प्रकाशन उद्योग निहायत ही असंगठित और बेजान! यहां औघड़ कबीर की वाणी याद आती है– साधो यह मुर्दों का देश...! कब्रिस्तान में जाओ तो कोई ना कोई भूत–प्रेत चलता–फिरता मिल जाएगा मगर हिन्दी की करोड़ो जनता एक सामूहिक कब्रिस्तान में सोती प्रतीत होती है– यहां कोई हलचल नहीं.

फिलहाल लेखक यह विचार करें कि क्यों न अपनी कहानियां एक थ्रीलर की तरह लिखें. भले ही वे किसी सामाजिक एजेंडे पर लिख रहे हों, स्त्री विमर्श कर रहे हों, पुरूष विमर्श कर रहे हों, एक–दूसरे का सर फोड़ रहे हों, जो भी विषय हों, वे 'लिटररी थ्रीलर' लिखने पर विचार कर सकते हैं.

थ्रीलर या रोमांच पर थोड़ा विचार कर लेना सही होगा. असल में कहानी में जो 'कहानीपन' होता है वो पाठकों को रोमांचित करने के लिए होता है. वरना हम कहानी के प्रति क्यों आकर्षित होंगे. कहानी तो तभी बनती है जब किसी सामान्य सी घटना में असामान्य बात बता दी गयी है. या घटना ही इतनी आसामान्य है कि उसे बताने के लिए किसी तकनीक की ज़रूरत महसूस नहीं की गयी. सीधी घटना ही पाठकों को रोमांचित कर रही है. जैसे एक चोर की कहानी कि कैसे उसने सेठानी के गले से हार चुराया–खासकर तब जब सभी जाग रहे थे. कोई स्त्री बाज़ार गयी और खरीददारी कर वापस घर आ गई, घर में बच्चों के संग टीवी देखने बैठ गयी, यह कहानी नहीं हुई, यह भी कहानी नहीं हुई कि एक व्यक्ति रिटायर हो गया और घर के बाजू में एक परचून की दुकान खोल लिया, या खूब कमाए पैसों से समुद्र किनारे रहने लगा. इसमें कोई घटना नहीं. कहानी तब बनेगी जब बाजार जाती स्त्री के साथ अनहोनी होती है, सेल्समैन ठगी करता है – या छः सौ रूपए का बिल काटता है मगर वह स्त्री भुगतान हजार रूपए करती है. वह विरोध करती हैं और एक अलग सत्य, एक छोटा सत्य उजागर होता है. उसी तरह रिटायर पुरूष के जीवन में 'मोड़' तब आता है, जब उसे वहां कोई स्त्री मिलती है– दोस्ती होती है और एक कहानी में खूबसूरत 'ट्विस्ट' आता है– उम्र के इस पड़ाव पर पुरूष के लिए असामान्य घटना है – प्रेम और रिश्तेदारी एक अलग कहानी बनाती है. यहां पुरूष और स्त्री दोनों का पृथक अपना आंतरिक संसार बनता–खुलता है.

थ्रीलर आवश्यक नहीं कि जासूसी कहानियों की तरह लिखा जाए पर एजेंडाबद्ध रचनाएं जैसा हिन्दी साहित्य में घिसे–पिटे तरीके से लिखी–छापी जाती हैं– कहानियॉ वे भी नहीं हैं. स्त्री लेखिका है, स्त्री है तो पुरूष द्वारा शोषित! वह कार्यालय में काम करती है तो सहकर्मी उसे 'कुदृष्टि' से देखेंगे ही, बॉस उसे अपने चेम्बर में बुलाएगा ही, पति उस पर लानत भेजेगा ही, अपशब्द कहेगा ही. वह जिससे शिकायत करने जाएगी वह भी पुरूष होगा, उसकी महिला सहकर्मी मित्र भी उसे 'चलता है' कहकर चलता कर देगी क्योंकि ऐसा तो होता ही है. संभव है जीवन में ऐसा होता हो, कटु सत्य है, मगर यहॉ एक कहानी बन तो जाती है मगर सिर्फ बनती भर है. ऐसे यथार्थपरक हिन्दी की सैकड़ों कहानियॉ लिखी व छापी जाती हैं.(पल्प फिक्सन की तरह ?)

जीवन का यह सत्य पाठकों को पढ़ते हुए ऐसी कहानियॉ नकली लगती हैं. इस पर विचार आवश्यक है. असल में यह वह यथार्थवादी ढॉचा है जिसके सॉचे में ढालकर आधुनिक कथाएं गढ़ी जा रही हैं.

सार संक्षेप में कि पाठक इन कहानियों के अंजाम जानता है – पाठक उन कहानियों के अंजाम जानता है जो लोकथात्मक

तरीके से लिखी जाती हैं कि नायक जीतेगा ही– कि हनुमान पहाड़ उठा लाएँगे और लक्ष्मण को प्राण मिलेगा. पर यहाँ एक फर्क है– जीवन के प्रसंग और कथा कहने के तरीके में.

अब ऐसे सामाजिक सत्य किस तरह लिखे जाने चाहिए ? इस पर यही कहना समीचीन प्रतीत होता है कि लेखक स्वयं अपना तरीका इज़ाद करे. वह अपनी कथा के साथ अपने चरित्रों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहता है – वह बेहतर जानता है. फिर यह कला/साहित्य का क्षेत्र है जहाँ अनंत संभावनाएं हैं.

थ्रीलर लिखने के कई तरीके हैं – कुछ लेखक 'पेज टर्नर' किताबों की तरह लिखते हैं – अर्थात् हर पृष्ठ में रोमांच मौजूद रहता है. जैसे रमेश और सुरेश स्कूल से भागकर फिल्म देखने जाते हैं. सहपाठियों से किस तरह बहाना बनाते हैं, किस तरह स्कूल कैंपस से निकलते हुए सबकी नज़र बचाते बस अड्डे पहुंचते हैं– जहाँ स्कूल ड्रेस में सबकी निगाहें उनकी ओर जाती है. यही हाल उनके सिनेमा हॉल तक पहुंचने पर होता है. उनके बाहरी और भीतर द्वन्द के लिए इस प्लॉट में खूब संभावना है. हास्य, जीवन का सच, स्कूल लाईफ में आजादी की तलाश आदि विषय सम्बंधी प्रश्न यहां उठाए जा सकते हैं, वह भी मनोरंजक तरीके से. यानी 'थ्रील' का इस्तेमाल करते हुए.

सिनेमा हॉल में लौटते हुए उनकी मास्टरजी से मुठभेड़ हो ही जाती हैं. (वे किस तरह उनका सामना करते हैं, वे क्या बहाना बनाते हैं– पाठक को रोमांचित करेगा.)

दूसरा तरीका है जिसमें कहानी सामान्य सी लगती प्रवाहित होती है – पाठक को कहानी पढ़ते वक्त लगता है जैसे कोई साधारण सी बात, साधारण सी घटना का विवरण पढ़ रहा हो, मगर कहानी के अंत तक आते आते उसके समक्ष ऐसा रहस्य खुलता हैं कि वह भौंचक रह जाता है. ऐसा तो उसने सोचा भी न था. मनुष्य जीवन के भीतरी या बाहरी घटनाओं के मर्म यहाँ कुछ इस तरह खुलते हैं कि पाठक का पढ़ना सार्थक हो जाता है. साहित्यिक थ्रीलर ज्यादातर इसी टेकनीक से लिखे गये हैं. हालांकि उन्हें साहित्यिक थ्रीलर की श्रेणी में हमने अभी तक विचार नहीं किया है– महान कहानी 'बड़े भाई साहब' (प्रेमचंद) को याद कीजिए जब कहानी के अंत में बड़े भाई साहब का भावनात्मक पक्ष खुलता है. पाठक रोमांचित हो जाता है. ईदगाह कहानी में बालमन में जिस तरह तीन पैसे के साथ तमाम मेले में हामिद को संघर्षरत देखा जाता है, यथार्थ और बाल सुलभ इच्छाओं के बीच द्वन्द देखा जाता है वह किसी थ्रीलर से कम नहीं. 'पूस की रात' के अंत में ज्ञात होता है एक दुर्लभ मगर कटु सामाजिक सच हमारे सामने खुल गया है. 'सदगति' में कोई कल्पना भी नहीं कर पाता कि यह 'सद्गति' कैसी होगी. 'कफन' में तो बिल्कुल आसामान्य सी घटना है जिस पर आज तक विमर्श जारी है. अमरकांत की 'जिंदगी' और 'जोंक' में बिल्कुल कथा के अंतिम वाक्य से ही कहानी का वास्तविक मर्म, या कहें जीवन का सत्य उजागर होता है. मोपासां की 'द रिंग' और उनकी अधिकांश कथाएं उसी तरह बुनी गयी हैं. अतः कहानी में क्या होगा के भाव के साथ–साथ कहानी का अंत कैसा होगा, वह अज्ञात ही रहता है. और यही कहानी का आवश्यक तत्व है. चाहे वे कहानियां साहित्यिक हों या पल्प फिक्सन! इन तमाम कहानियों में लोककथाओं के तत्व मौजूद हैं. इसलिए चाहे जितनी बार पढ़ी जाएं, सुनी जाएं कम हैं.

इधर इस सनातन तत्व के विरोध में आधुनिक लेखन में कहानियों में 'स्लाईस ऑफ लॉइफ' की तकनीक ने कहानीपने का बहुत कबाड़ा कर दिया है. दुनिया और देश में चंद दर्जन भर लोगों द्वारा इसे एक 'मानक' या स्टैंडर्ड मान लिया गया है कि कहानी ये ही है. असल में, इसने सिर्फ एक ही काम किया है– आम पाठकों को साहित्य से दूर करने का. सच तो ये है कि ये सफल इसलिए हुए कि लोगों ने इसे नये प्रयोग के तौर पर पढ़ा, मगर आनेवाली पीढ़ी ऐसी रचनाओं से तुरंत किनारा कर लेती हैं. प्रयोग से परहेज नहीं, मगर कोई इक्का–दुक्का प्रयोग धारा के विपरीत जाकर सफल होता है तो उसे मानक मान लेना हमारी भूल होगी.

इस तरह थ्रीलर टेकनीक शिल्प के स्तर पर, चरित्र या विषय के भीतर प्रवेश के स्तर पर एवं अंततः चरित्र के मानस या आत्म तक पहुंचने के लिए आवश्यक द्वन्द– ये अंतिम ऐसा थ्रीलिंग तत्व है जो कहानी के रूप या स्वरूप के स्तर पर घटित न होकर चरित्र या कहानी के बिल्कुल भीतर घटित होता है. जिसे ज्यादातर हम आत्मा का द्वन्द कहते हैं, द्वन्द या स्व से संघर्ष नाम देते हैं. इनका स्वरूप पूरी तरह थ्रीलिंग होता है क्योंकि ऐसे प्रश्न चरित्र के साथ–साथ पाठक के भीतर भी उसी समभाव से आंदोलित होते हैं. यही वो स्थल है जहां एक साधारण साहित्य 'क्लासिकल' बन जाता है. ये दृश्य ही मानव धरोहर है–आत्मा को जगाने वाला, प्रेरक और कहे तो वास्तविक साहित्य! यह सच ऐसा सच होता है कि पाठक का न केवल विवेक जागृत कर देता है बल्कि जीवन या विश्व को देखने का नज़रिया ही बदल जाता है. चाहे वो सच सामाजिक सच हो या

आत्मिक–इससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ता. मगर ऐसे सत्य का प्रकटीकरण ही बड़ा थ्रीलिंग होता है.

उदाहरण के तौर पर यही कहना चाहूंगा कि हमारी तमाम पौराणिक विरासत इस थ्रीलिंग तकनीक से भरी पड़ी है. महाभारत से अधिक 'थ्रीलर' शायद ही दुनिया में कोई अन्य साहित्य हो. रामायण में भी इसके सुन्दर प्रयोग हुए हैं पर सर्वश्रेष्ठ थ्रीलर का उदाहरण मैं दो उदाहरणों से स्पष्ट करना चाहूंगा. वैसे तो तमाम महाभारत कथा शुरू से आखिर तक रोमांच से भरी पड़ी है – इस कथा में रूप से लेकर पात्र, चरित्र के अन्तस तक ऐसा कोई कोना नहीं जहॉ थ्रीलर कथाएं नहीं कही गयी हों. कल्पना कीजिए कौरव–पांडव आमने सामने अपनी–अपनी सेनाओं के साथ खड़े हैं. कृष्ण अर्जुन को युद्ध स्थल के बीच लाते हैं जहां उनके शत्रु सामने दिखते हैं– जिनपर अर्जुन को बाण चलाना है. कहना न होगा कि गुरू, पितामह इत्यादि अपनों को देख अर्जुन धनुष रख देते हैं. अब कृष्ण की बारी है – अर्जुन को कर्तव्य–अकर्तव्य का पाठ पढ़ाने की.

कृष्ण अतिमानव थे, अर्जुन के भीतर चल रहे द्वन्द को समझना उनके लिए आसान था – इसलिए उसे समझाना और अर्जुन को कर्तव्य पथ पर लाना भी उनके लिए सहज कार्य ही था पर, महाकवि ने इस अल्प समय में जो 'गीता ज्ञान' दिया वह समयातीत साबित हुआ. वैसे तो उस अल्प समय के गूढ़ ज्ञान को हम आज तक समझने का प्रयास कर रहे हैं और आगे भी यह सिलसिला जारी रहेगा. मगर कथा टेकनीक के तौर पर यह दृश्य आज तक मानवता को रोमांचित कर रहा है– हमारी आत्मा, हमारी संवेदना, हमारी बुद्धि को. कुछ लोगों का ख्याल है कृष्ण ने जादुई प्रभाव से सूर्य का ढलना, अर्थात् पृथ्वी का घूर्णन तब–तक के लिए रोक दिया था जब–तक अर्जुन ने दुबारा गांडीव न उठा लिया. अगर ऐसा था तो वाकई इससे अधिक थ्रीलींग और क्या हो सकता है. वैसे देखा जाए तो कृष्ण अतिमानव थे और अर्जुन श्रेष्ठ मानव– जैसा महाकाव्य में बताया गया है. अतः संभव है मात्र **एक शब्द से भी कृष्ण अपनी बात चक्र की तरह भेदते हुए अर्जुन के हृदय में बात का मर्म समा** सकते थे. मगर– महाकाव्यकार–आम लोगों को गीता का पाठ पढ़ा रहा है. अतः समय का ठहरना जरूरी है. क्योंकि गीता ज्ञान सुनते हुए 'समय' स्थिर हो जाने का ही अहसास होता है – और यह थ्रीलर है. सबसे बड़ा थ्रीलर. यही समय यहॉ हमें बताता है कि समय–चक्र कहीं नहीं घटता. वह बाहर नहीं हमारे भीतर है. हमारे भीतर समय–चक्र है, हम बीतते हैं, हम रीतते हैं– दुनिया का सूर्य या चॉद सिर्फ एक आईना भर हैं.

थ्रीलर का दूसरा सुन्दर उदाहरण रामायण में लक्ष्मण के तीर लगने के उपरांत हनुमान द्वारा राजवैद्य सुशैण से वार्तालाप, उनकी सेवा लेना, संजीवनी लाने आकाश मार्ग से उड़ जाना– मात्र अगले दिन के सूर्योदय तक का समय उनके पास है. मार्ग में हनुमान को कई विघ्न–परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है, सुरसा, गुप्तचर, संजीवनी पहचानने का संकट और अंततः वापसी पर भरत के बाण से घायल होना. यहां भी समय अल्प है और इसी अल्प समय में जीवन के गूढ़तम रहस्य उद्घाटित होते हैं. इन तमाम रूपकों का महत्व सनातन है जो आगे भी मनुष्य जाति को आत्मिक प्रकाश देता रहेगा.

इस तरह, हमारी महान् साहित्यिक विरासत में कथा का यह बुनियादी तत्व–जिसे 'थ्रीलर' शब्द से सम्बोधित करना चाहूंगा– भरी पड़ी है. आप चाहे तो जहां से, जैसा भी कोना उठा लें.

और अंत में, राजा जनक से जुड़ी एक लोककथा से अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा जिसमें थ्रीलर तकनीक से आत्म–दर्शन होते हैं. यहां इसलिए कुछ स्फीति चाहूंगा कि यह थ्रीलर व्यक्ति चरित्र के बिल्कुल भीतर घटित होता है– और आगे सत्य कहॉ है– कैसा है– किस रूप में है– का सुन्दर तात्विक विचार प्रकट होता है. कथा इस प्रकार है–

एक बार राजा जनक किसी अमात्य से रूष्ट थे. सभासदों के बीच राजा जनक ने उसे देश निकाला की सजा दी. अमात्य ने विनम्रतापूर्वक राजाज्ञा स्वीकार की और पूछा महाराज! मुझे आपका दण्ड स्वीकार है मगर आपके राज्य की सीमा कहॉ तक है– ताकि वह उस निर्धारित सीमा से बाहर अपना शेष जीवन व्यतीत करे. राजा जनक सोच में पड़ गये. वास्तव में यह गहरा सवाल था कि राज्य की सीमा से लगे कई सामंतों की सीमाएं थीं जो उनकी अधीनता तो स्वीकार करते थे, मगर स्वतंत्र हैसियत रखते थे. क्या उन सीमांत प्रांतों को अपना अधिकृत राज्य कहना उचित होगा ? राजा जनक सोच में पड़ गये और इसके सही उत्तर के लिए आमात्य को दूसरे दिन सभा में बुलवाया. राजा जनक रात–भर उस प्रश्न पर विचार करते रहे और दूसरे दिन इस निर्णय पर पहुॅचे कि सीमांत–प्रांतों को अपना अधिकृत क्षेत्र कहना उचित नहीं होगा. अतः वह दोषी अमात्य चाहे तो उन प्रांतो में रह सकता है. मगर फिर उनके भीतर हलचल हुई कि क्या वे जो उनके अधीनस्थों के मार्फत क्षेत्र शाशित हैं– उन्हें अपना वास्तविक सत्ता–क्षेत्र कहना उचित होगा ? वे सब क्षेत्र नाममात्र के उनके अधीन हैं– सच तो यह है कि उन पर वास्तविक सत्ता अधीनस्थ राजाओं की है. राजा जनक उस दिन निर्णय नहीं कर पाए और सतत् चिंतन करते रहें ताकि

दण्डित करते वक्त किसी के साथ अन्याय न हो. तीसरे दिन राजा जनक ने यह फैसला किया कि नहीं वे अधीनस्थ प्रांत भी उनकी प्रत्यक्ष सत्ता के अन्तर्गत नहीं आते मगर फिर सवाल उठा कि क्या उनका राज्य उनके अधीन है ? वहॉ भी तो आमात्यों का शासन चलता है जो उनके प्रतिनिधि हैं. तब यह फैसला लिया गया कि नहीं, यह नगर ही है जहॉ उनकी वास्तविक सत्ता मौजूद है और दोषी आमात्य मात्र नगर छोड़कर कहीं बस जाएं. मगर–राजा जनक की नींद उड़ गयी थी क्योंकि विचार करने पर उन्होंने पाया कि नगर का कोतवाल है जो नगर का वास्तविक शासक है राजा जनक नहीं. और अंततः राजा जनक ने यह माना कि यह राजभवन ही वास्तविक सत्ता क्षेत्र है– यही वो स्थल या क्षेत्र है जहॉ उनकी पूरी सत्ता सार्वभौम रूप से मौजूद है मगर हरम की स्थिति आड़े आ गयी, राजा जनक का आधिपत्य अपने हरम में कतई नहीं था, वहॉ तो रानी की हुकूमत थी. तब अंततः यही विचार हुआ कि यह सदन ही है जहॉ उनकी वास्तविक सत्ता गोचर होती है– पर कहॉ ं! वहॉ भी तो भॉति–भॉति के मंत्री और पार्षद–मौजूद थे जिनकी चलती थी. थककर राजा जनक ने एक दिन एलान किया कि यह उनका शरीर है जिस पर उनका अपना वास्तविक आधिपत्य है. पर बात जैसे उनके स्व के शरीर पर टिकी, उन्हें प्रतीत हुआ कि उनका मन तो सबसे प्रबल विरोधी है. उनका कहा तो सुनता ही नही,! जब स्वयं के मन पर जिस प्राणी का काबू नहीं वह कैसे अपना अधिकार क्षेत्र नगर, प्रांत या राज्य घोषित कर सकता है!

कहना न होगा कि तत्व ज्ञान की बातें भी यहॉ थ्रीलर के साथ–साथ बड़ी सुन्दर रूपक में कही गयी हैं.

जीवन के जटिल और गूढ़तम प्रसंग को सरल व रोचक बनाकर कहना–यह हमारी परंपरा है. आज आधुनिक हिन्दी साहित्य अपने महान पोथियों के करीब होते हुए भी कितना दूर चला गया है, कहने की आवश्यकता नहीं!

बस्तर पाति फीचर्स

एस.एस.त्रिपाठी की कविता

काम, योग और भोग

काम एक प्रचंड ऊर्जा
ऊर्जा जीवन का पर्याय
जीवन यानि गति
गति से लय का जन्म
लय का अर्थ रागात्मक वृत्ति
यही आनंद है.
एक स्थिति
जहॉ अपने को
भूल जाना होता है
अर्थात् अहम् से निवृत्ति
लय का जन्म
जो आनंद है.
योगी और भोगी
दोनों की एक खोज
'आनंद'
योगी की लय गति
ऊर्ध्वगामी है.
नाभि से हृदय तक
आनंद
हृदय से ज्ञान समाधि तक
परमानंद
इसकी इतिश्री
सोखना और पचाना है
इसलिए
योगी का आनंद शाश्वत है.
योगी
अंदर रमता है
परमानंद के लिए
जहॉ
मैं और मन
दोनों मेरे होते हैं.
भोगी की लय गति
अधोगामी है
लक्ष्य
क्षरण है
इसलिए उसमें
अधैर्य है.
इसका धर्म
सृजन है
इसलिए संसार है
सृजन
ऋणमुक्ति का
साधन है.
योगी भी
भोग का परिणाम है
आप बतायें
योगी बड़ा या भोगी ?

भोग और योग

भोग शरीर का धर्म
इच्छा भोग की जननी
इच्छा को मारना नहीं
उसे विकसित करना है
बिना इच्छा के भोग कहॉ ?
बिना भोग समाज संस्कृति
सभ्यता का उन्नयन कहॉ
ईश्वर संसार की सुव्यवस्था का नाम है.
इस व्यवस्था में तुम्हारा योगदान
संसार को सुंदर बनाना है.
मर्यादित भोग
योग का अंग है
संसार को सुंदर बनाना
भोग का धर्म है
योग और भोग
एक ही सिक्के के दो पहलू हैं.

फेजरपुर, जगदलपुर मो.–07898891908

शास्त्र बनाम लोक

शास्त्र और लोक की बातें हम सुनते आए हैं. शास्त्रीय गायन, शास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय लेखन, शास्त्रीय नृत्य, वहीं लोकगीत, लोकसंगीत, लोककथा, लोकनृत्य इत्यादि. शास्त्र बनाम लोक में स्पष्ट अंतर लक्षित किया जा सकता है, जैसे शास्त्रीयता जहॉ जटिल, निश्चित निमयों से संचालित और आधुनिकतम तकनीकी प्रयोग तथा विषयों द्वारा लक्षित किए जा सकते हैं वहीं लोककला में परम्परा का निर्वाह, पारंपरिक 'टूल्स' का प्रयोग, पारंपरिक विषयों के प्रति आग्रह साफ लक्षित होते हैं. एक तरह से प्रथम दृष्टया जो तस्वीर बनती है वो है लोक परम्परागत देहातों से जुड़ी तथा शास्त्र 'अरबन' या शहरी क्षेत्र से जुड़ी. भाषा, बोली, इसमें इस्तेमाल किए जाने वाले साधन और अभिव्यक्त करने की शैली भी बहुत कुछ 'क्रूड' बनाम 'सॉफिटीकेटेड' अथवा 'रॉ' बनाम 'परफेक्ट' जैसा ही प्रतीत होता है, और यह बहुत हद तक सही भी है. जो फर्क गुड़ या खाण्डसारी और शक्कर में है, जो फर्क तकली या चरखे से काटे धागे में और कॉरपोरेट मिक्स के बुने कपड़ों के बीच है–वैसा ही फर्क बहुत कुछ शास्त्र बनाम लोक के बीच है.

क्या ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ?

गुड़ भी मीठा होता है और चीनी भी. दुनिया की कोई भी मिल हो कपड़ा बुनने के लिए उसे धागे की आवश्यकता होती है–चाहे वह धागा कितना भी सिंथेटिक हो. और–यहीं हमें इन दोनों के बीच फर्क का पता चल जाता है. प्रथम दृष्टया ही प्रतीत होने लगता है कि वे एक होते हुए भी उनके बीच काफी अंतर है. और इनके बीच की भिन्नताओं को नजरअंदाज़ नहीं किया जा सकता.

शास्त्रीय कला और लोककला के फर्क को समझने के लिए उपर्युक्त उदाहरण यथेष्ट नहीं है– क्योंकि कला के अपने नियम, यम और गति होते हैं और मैनुफक्चरिंग दुनिया के अपने उसूल हैं. हां, उक्त उदाहरण इन दोनों के भेद को समझने में हमारा कुछ सहयोग अवश्य करते हैं.

शास्त्रीयता जितना नियमों से बंधी होती हैं उतना लोक नहीं. शास्त्रीय गायन या संगीत को ही लें, परंपरागत काव्य को ही लें– वे सब एक निश्चित नियम में बंधे हैं. शास्त्रीय नृत्य की अपनी स्पष्ट भाव–भंगिमाएं हैं. रागों के छेड़ने के निश्चित समय होते हैं– उनका अपना एक अनुशासन होता है। एक स्पष्ट राग या आलाप, फिर स्पष्ट अंतरा और मुखड़ा . 'वहीं लोककलाएं, चाहे वे चित्रकला हो, नाट्य–नृत्य हो, गीत या संगीत हो या लोकसाहित्य–वे सब परंपराओं का निर्वाह करते हुए अपने समय और स्थान बोध से परिवर्तित–परिमार्जित होते रहते हैं. इनके विषय वही खेत–खलिहान, नदी, कुंऑ या पहाड़ होते हैं मगर अपने समय के सन्दर्भ में. यानी लचीलापन इनकी खासियत है. एक लोकगीत को दस गायक दस अलग–अलग तरीके से गा सकते हैं. अपने–अपने स्थानीयता के तत्वों–धनों से युक्त कर सकते हैं. कहने की आवश्यकता नहीं कि शास्त्रीयता में ऐसी, या कहें, इतनी मात्रा में 'छूट' या आजादी तो है ही नहीं.

शायद यही कारण है कि लोक जहॉ हमारे दिलों के करीब है, वहीं शास्त्र हमारे मस्तिष्क के. जहॉ एक हमारे दिल में सीधे प्रवेश पाता है वहीं दूसरा हमारे दिमाग़ के दरवाज़े से दिल तक पहुॅचने को मशक्कत करता है. एक जितना सरल होता है दूसरा–उतना ही जटिल और जटिलतर होता जाता है.

ऐसा क्या है– वे कौन से सनातन तत्व हैं जो हमें एक निश्चित नियम में, एक अनुशासन में बांध देते हैं ? और उस नियम, अनुशासन से ज़रा भी इधर–उधर खिसकते वे खारिज हो जाते हैं.

क्या इसलिए यह ऐसा है क्योंकि यह सृष्टि ही एक निश्चित नियम में बंधी है ? जहां तक दृष्टि जाती है प्रकृति और परा–प्रकृति में एक अनुशासन, यम और नियम स्पष्ट दिखाई देते हैं. पृथ्वी अपनी धुरी से एक अनुपात में ही घूमती व स्थित है– सारे ग्रह–उपग्रह एक अलिखित नियमों का पालन कर रहे हैं. धरती की तरफ हर चीज बिना अपवाद के खींची चली आती है. सूर्य नियम से–अर्थात् पृथ्वी के चक्कर लगाने के कारण एक नियम के तहत प्रकट होता है.

अगर ऐसा है तो अनुशासन या नियम सर्वोपरि है. तब हमारी कलाओं में ये शास्त्रीय सम्मत बातें समाहित हैं तो आश्चर्य नहीं. मगर यहीं प्रश्न उठता है कि क्या ये अंतिम हैं ? और अगर यह अंतिम सच है तो कलाओं को अब तक दो जोड़ दो चार की तरह फिक्स होना चाहिए था. यानि सब कुछ पूर्व निर्धारित. एक निश्चित नतीजे के साथ. तब क्या ये दुनिया कलाकारों की दुनिया न होकर रोबोटों द्वारा संचालित दुनिया नहीं बन जाती ? हमारा आज तक का जो विकास है वह अपूर्ण–एकांगी,

रसहीन नहीं रह जाता ?

पर, यह भी सच का एक अंश भर है. यानि सच है मगर सापेक्षिक! निरपेक्ष रूप से सत्य कुछ भी नहीं–वस्तुतः निरपेक्ष सत्य का अस्तित्व ही नहीं होता. वो सत्य जो अंतिम हो –वही हो और उसके आगे कुछ और नहीं– ऐसा सत्य इस सृष्टि में कहीं नहीं.

इसलिए कोटि लोगों का सत्य या अनुभव बिल्कुल विशिष्ट होता है– इतना विशिष्ट कि वह किसी और का हो ही नहीं सकता. यह इस दुनिया की बड़ी खूबी है.

फिलहाल, हम शास्त्रीय और नियमों की बातें कर रहे थे.

यहीं हमें संसार का दूसरा पक्ष दिखने लगता है कि सृष्टि जिन नियमों–अनुशासनों से संचालित है– वहीं सृष्टि के तत्वों में ही आजादी, नियमों से परे जाने की चेष्टा जैसे भाव भी विद्यमान है. अर्थात् सृष्टि उन तमाम विरोधी तत्वों से बनी है जितनी कि यह बन सकती थी. जितना अनुशासन–उतना उन अनुशासन से विद्रोह. एक तरह से यहॉ औघड़ तत्व भी उसी मात्रा में मौजूद हैं– पहले खाना फिर स्नान!

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि प्रकृति की बात करें या परा–प्रकृति की, दो विरोधी तत्वों के बिना संसार का कोई अर्थ ही नहीं होता. स्त्री–पुरूष, कोमल–कठोर, प्रकाश–अंधेरा, प्रकट एवं गुप्त इत्यादि शक्तियॉ एक समान, एकसाथ यहॉ संचालित हैं. और, इनके बीच तलाश और फिर इन द्वन्दों से परे जाने की स्थिति! ये मूल चीजें सृजन के साथ भी लागू होती हैं.

यहॉ इन तत्वों की विवेचना की आवश्यकता क्यों पड़ी ? क्योंकि कलाएं हमसे निकली हैं और हम जितना इस सृष्टि के भीतर हैं उतना बाहर भी! या संभव है भीतर या बाहर से परे कोई तीसरा कोना है वहां संभव ये सब व्यक्तिगत संभावनाओं पर आध ाारित हों. कहने का तात्पर्य ये कि कलाऍं अनुशासन को जितना स्वीकार करती हैं उतना ही अस्वीकार भी! यह द्वन्द है. बिना द्वन्द के सृजन संभव नहीं. अभिनेता अपनी छवियों से मुक्त होना चाहता है, लेखक–कवि अपनी विधा से हटकर कुछ पृथक करना या प्रयोग करना चाहता है–गायक कुछ अलग शैली में गाना चाहता है. और यही वे द्वन्द हैं जो किसी भी कलाकार को गति प्रदान करते हैं–उसे निरंतर चलायमान, 'पैशनेट' बनाए रखते हैं. कुछ की तलाश–निश्चित नियमों को खारिज कर नये प्रतिमान गढ़ने की ललक!

यह न जायज है ना ही नाजायज, बल्कि यह स्वाभाविक प्रक्रिया है.

इस लेख को प्रारंभ करने का उद्देश्य लोक और शास्त्र को परिभाषित, या व्याख्या करना भर था ? नहीं. बल्कि इसके साथ जुड़ी चिंता थी, कि आज के समय–सन्दर्भ में मनुष्य जहॉ तकनीक और विज्ञान से घिरा है– कहीं अपनी सोच से इतना हावी न हो जाए कि 'मानव'–भाव' को खारिज कर दे और सर्वथा अपने लिए एक 'रोबोट दुनिया' आबाद कर ले. रोबोट द्वारा संचालित, रोबोटों के लिए रोबोटों द्वारा! यानी तकनीक–क्लास–नियम–अनुशासन कला के क्षेत्र में भी हावी हो जाए जबकि भावों को एक 'शेप' देने के लिए अनुशासन–व नियमों की उतनी ही आवश्यकता है जितना शास्त्रों को जो नियमों में बंधे होते हैं, अपने भीतर 'ज्ञान' लाने के लिए मानव भावों की आवश्यकता.

एक महान शास्त्रीय गायक संभवतः पानी में आग लगा दे– अपनी ध्वनि शक्ति से, तकनीक से, पर संभव हो एक लोक गायक सीधे हमारे दिल में भीतर प्रवेश कर जाए–हमें प्रकाशित कर दे.

यही फर्क है. दोनों का सुन्दर समागम या कहें मिश्रण ही श्रेष्ठ कला है– जितना भाव उतना अनुशासन, जितना समय उतना ही स्थान भी, जितना चरित्र उतनी गति भी. यानी सब कुछ! शरीर और आत्मा सबकुछ! रूप और प्राण एक साथ!

सच तो ये है कि अनुशासन में ही आजादी और आजादी में अनुशासन के रहस्य छिपे हैं.

क्या यह खतरनाक नहीं है कि कोई लेखक या नेता या अभिनेता या चित्रकार अपना एक 'स्कूल' या मेथड' या 'घराना' बना ले ? सभी नये कलाकार 'टाइप्ड' हो जाएं ?

ठेठ कलाकार, खांटी गायक अपनी माटी की गंध लेकर आएगा, फ्रेश! क्योंकि सृष्टि के नियम जितना अनुशासन सीखाती है, उतना ही साथ–साथ हमें आजादी के अर्थ भी बताती चलती है. और यह भी बताती है कि कहॉ जाकर हमें टिकना है. वह समकलन या आदर्श बिंदु कहॉ है. फिर समय और स्थान के सापेक्ष कलाकार द्वारा उस 'आदर्श बिंदु' की खोज प्रारंभ होती है. इसलिए ना इस सृष्टि का अंत होता है ना ही कलाओं का!

बस्तर पाति फीचर्स

नायक एवं खलनायक (एक)

इसमें दो राय नहीं कि हम जिस दौर से गुजर रहे हैं, वह बहुत जटिल है. आगे यह दृश्य और अधिक उलझाने वाला ही हो सकता है. प्रगति के नाम पर बहुत ज्यादा 'मटेरियल लाइफ' पर जोर भौतिक वस्तुओं की भरमार. हमें लगता है हम इन चीजों से घिर गये हैं चारों ओर बाढ़ आई हुई है.

क्या कभी ये दृश्य बदल पाएगा ? क्या इन चीजों से घिरा मनुष्य इनका आंतरिक प्रतिरोध कर पाएगा ? यह निश्चित है कि यह मनुष्य का मूल स्वभाव नही है. मगर वह कितनी जल्दी इनकी शिनाख्त कर पाएगा– वह तो समय ही बताएगा.

मनुष्य अपने मूल की ओर लौटे. मनुष्य प्रकृति की ओर जाए. मनुष्य इस सार्वभौम जीवन के सत्य को देख पाए– इस तथ्य को कौन बताएगा ? इस तथ्य को कौन बताएगा कि मनुष्य आखिर में है क्या, इसका इस विराट परिदृश्य से क्या और कैसा नाता है ? अर्थात् मानव के मूल स्वरूप की व्याख्या हम कहॉ खोजें– साहित्य में ?

निश्चित रूप से उतर है– हॉ ! चौराहे पर खड़े मानव को, चाहे वह सशंकित हो या दिग्भ्रमित, साहित्य ही सही राह दिखा पाने में सक्षम है.

वर्तमान जीवन की तरह आधुनिक साहित्य भी उलझ गया है. वह यही नहीं समझ पा रहा है कि वह अपनी अभिव्यक्ति किस तरह करे– यर्थाथवादी तरीके से, अति यर्थाथवादी रीति से, आधुनिक या उत्तर आधुनिक पद्धति से.

आधुनिक साहित्य की ये दलील है कि चूंकि यथार्थ जटिल हो चला है– मानव सोच व संस्कृति अति संश्लिष्ट, पहले से कही अधिक उलझी, अबूझ हो चली है अतः इनसे उद्भूत साहित्य, यथा कहानी, कविताएं उपन्यास इत्यादि का रूप और अन्तरवस्तु भी इन्ही जैसा ही होगा. यह तर्क गलत नहीं है, चरित्रों का शेड्स भूरा हो चला है, चरित्र विराट सिस्टम का अंगमात्र हैं– अतः अच्छे और बुरे की पहचान धरने वाले तत्व कथा साहित्य से लगभग गायब होते जा रहे हैं. कोई खलनायक या कोई नायक अब स्पष्ट चिन्हित नहीं हो पा रहा है. वर्तमान का यथार्थ कॉरपोरेट की ताकतों से संचालित है– बेचारा एक मध्यमवर्गीय या नगरीय या ग्रामीण पात्र तो इस सिस्टम का एक 'शिकार' मात्र है, उसकी अपनी सच्चाई, अपना प्रतिरोध बहुत मायने नहीं रखता. उसकी अपनी जीजिविषा और अस्तित्व ही खतरे में हैं और इसके लिए वह जो कुछ कर रहा है, वह 'अच्छे' या 'बुरे' की अवधारणा से परे है. उसकी आलोचना दरअसल हमारे वर्तमान समय की आलोचना है. उसकी अच्छाई या बुराई हमारे समय की अच्छाई या बुराई है. उसकी पराजय हमारे वक्त की हार है.

भौतिक यथार्थ जिस तेजी से बदलते हैं मानव मूल वृतियॉ उस तेजी से नहीं. यदि हम कहें कि मानव का मूल स्वभाव आदि काल से कमोवेश आज तक एक समान रहा है, तो अतिशयोक्ति न होगी. प्रेम, घृणा, ईष्या, क्रोध जैसे भावों से मनुष्य आज भी वैसे ही घिरा है, वैसे ही महसूस करता आ रहा है जैसा कि विभिन्न चरित्र हमारी पौराणिक कथाओं में. बेशक, उसे अभिव्यक्त करने के तरीके उसने बदल दिए हैं. पर, वे आज भी किसी न किसी रूप में व्यक्त किए जा रहे हैं.

इसका क्या अर्थ हुआ ? यही कि मूल वृतियॉ आज भी मनुष्य पर हुकूमत करती हैं. कह सकते हैं मनुष्य अपने स्वभाव का, अपने मनोभावों का दास है, कि मनुष्य इसीलिए मनुष्य है क्योंकि वह अपने मनोभावों के अधीन है अन्यथा वह रोबोट न हो जाता! तो क्या हमें इस मानवीय भावों का शमन, शोध नहीं लेना चाहिए ? उसके भाव किस तरह परिष्कृत होंगे ? उसका क्रोध और घृणा किस तरह नियंत्रित हो पायेगा ? उसका उदात प्रेम और किस तरह विकसित हो पाएगा?

निश्चित रूप से यह काम साहित्य और अन्य कलाओं के हिस्से आता है. विशेषकर साहित्य, जो मनुष्य के एक–एक कलपुर्जे को 'डिसमेंटल' कर उसकी शिनाख्त करेगा. उसकी विवेचना करेगा. उसकी खूबियों, खामियों की पहचान करेगा.

अपने मूल स्वभाव की ओर लौट चले– यहां लोककथाएं हमारी खूब मदद करती हैं. हम इनसे दो एक बातें स्पष्ट सीख सकते हैं– सर्वप्रथम कि नायक का रंग यहॉ स्पष्ट होता है. यहां 'ग्रे शेड्स' नहीं मिलेंगे. नायक पूरी तरह अच्छाइयों का पुतला होगा. वहीं खलनायक में दुनिया भर की बुराईयां होंगी. ऐसे चरित्रों की रचना करने में एक बात स्पष्ट है कि लेखकों को अच्छे व बुरे के बीच के 'संघर्ष' को दिखाने का खूब मौका मिलेगा. 'कॅनफ्लिक्ट' यानी संघर्ष की स्थिति निर्मित होने पर कथा में रोमांच उत्पन्न होगा. पाठक आकर्षित होंगे. बुरे से बुरा व्यक्ति भी अच्छे नायक की ओर आकर्षित होता है हम यहां उल्लेखित करना चाहेंगे की कथा साहित्य से ऐसे स्पष्ट संघर्ष की रचना स्थितियॉ या आत्म स्थितियॉ आधुनिक साहित्य से नदारद हो रही हैं. कथा एकरस व उदास हो चली है वजह ?– यथार्थ के नाम पर एक बने–बनाए शिल्प में 'पल्प

फिक्शन' लिखे जा रहे हैं. स्त्री विमर्श और पुरूष विमर्श.

प्रश्न उठाए जा सकते हैं कि अगर खलनायक का चेहरा इतना छिपा है और अमूर्त है तो उसकी पहचान कैसे की जाए ? उसका चेहरा कैसे सामने लाया जाए ? नायक की अच्छाईयॉ कैसे उभारी जाए ? उसे उस अदृश्य शक्ति से किस तरह संघर्ष करवाया जाए जो अमूर्त है ,परे है– जिसके बारे में ज्ञान ही नहीं है.

एक समाधान के तौर पर यही कहा जा सकता है कि वातावरण या परिस्थितियों का चेहरा खींचा जा सकता है. साहित्य के नये प्रतिमान, नये प्रतीक ढूंढे जा सकते हैं. हम अपने प्राचीन प्रतिमानों का सहारा ले सकते हैं मगर यह आवश्यक कतई नहीं, कि यथार्थ या अति यथार्थ के नाम पर एक रसहीन रचना, उबाऊ रचना पाठकों को परोस दी जाए. हम कैसे भूल जाते हैं कि वह पाठक एक मानव है जो भावों का पुतला है. हमें उसके मनोभावों को जागृत या परिष्कृत करना है. तथ्यों का 'डिटेल्स' कथा या उपन्यास की रचना नहीं कर सकता! वे रचनाएं रचना नहीं हैं. लेखक या रचनाकार स्वयं इसकी पड़ताल कर देख लें. वैसे भी, पेड़ के पत्ते गिनकर फोटोग्राफी की जा सकती है– मगर क्या वह कला होगी ? और कला होगी तो किस तरह की ? कला के लिए ज्यादा सटीक यही लगता है– आधी हक़ीकत आधा अफ़साना !

हमारी सारी लोककथाएं या पौराणिक कथाएं जितनी हक़ीकत हैं, उतनी अफ़साना भी.

आज आधुनिक साहित्य में हकीकत तो है– मगर अफ़साना नहीं. हम अफ़सानानिगारों की तलाश में निकले हैं.

बस्तर पाति फीचर्स

शशांक श्रीधर की दो कवितायें

चिन्ता

(बस्तर में अमन की)

खाने की मेज़ पर बैठता हूं
निवाला अन्दर नहीं जाता
लाल आतंक से मिलेगा छुटकारा
कब सदमे से उबरेंगे पहाड़, नदियॉ
कब जंगल में पनाह लेगी
आसमान में उड़ती मैना
पर्यटक आएगा तीरथगढ़ पर
कोटूमसर की गुफा में बात करेगा
अंधी मछलियों से
मामा–भांजा का मंदिर
क्या रहेगा सुनसान ही
कब तक झीरम घाटी रोती रहेगी
माओवादी और सेना का
अघोषित युद्ध जारी रहेगा
हिड़मा और मंगली मारे जाएंगे बेमौत
रेता जाएगा गला भरे बाज़ार
कोई दिन जाएगा ऐसा
जब धमाका न होगा
न उड़ेगी पुलिस पार्टी
किसी बारूदी सुरंग पर
अख़बारों की ख़बरें
उद्वेलित न करेंगी
जाती हुई मज़दूरीनें
कब गाएंगी रेला गीत
सोचता रहता हूं
और थाली छोड़कर
उठ जाता हूं
कुर्सी से चुपचाप

श्री शशांक श्रीधर

आकाशवाणी
जगदलपुर

मो.–09424290567

बाबूजी का चश्मा

50 साल पुरानी टेबल पर
मोटे फ्रेम का चश्मा
बाबूजी की दिलाता है याद
वे हमेशा एक ही चश्मे से
देखते थे सबको
भेदभाव से बहुत दूर
पढ़ाते गए सबको
ईमानदारी और नैतिकता का पाठ
वैसे ही जैसे
गणपति स्त्रोत
और रामरक्षा
रटा डाले थे
संस्कृत के कई श्लोक
मैं भी देखना चाहता हूं
उसी चश्मे से गुपचुप
और खिसकाना चाहता हूं
अगली पीढ़ी के लिए

नायक एवं खलनायक–(दो)

दुनिया में जितनी क्लासिकल रचनाएं हैं, उनमें नायक और खलनायकों का चेहरा स्पष्ट चिन्हित होता हैं. हिन्दी सिनेमा के चेहरे से कौन वाकिफ नहीं है! पर यहां, शब्दों की दुनियॉ की बात की जा रही है. कई बार इन महान् रचनाओं में परिस्थितियॉ नायक के साथ शत्रु जैसा बर्ताव करती दिखती हैं. महाभारत के पात्र कर्ण आखिर किस नियति का शिकार है ? कई बार कहानी में खलनायक के साथ–साथ परिस्थितियॉ भी नायक के प्रतिकूल हो जाती हैं. जहाज किनारे लगा है, सुरक्षित है. यात्री बीच समुद्र में 'भॅवर' में फॅसते हैं भॅवर से किसी तरह जहाज निकलता है कि शार्क का हमला आतंकित करता है. जहाज का कप्तान शार्क को पराजित करता है कि आगे समुद्री लुटेरों का दल तैयार है जहाज का कप्तान जो सबका नायक है– इन तमाम अवरोधों को पार करता है. अपने लोगों और यात्रियों को प्रोत्साहित करता है और एक वास्तविक कप्तान, सफल कप्तान बन जाता है.

कप्तान के शौर्य, कुशलता, साहस ,चतुराई और धैर्य– ये तमाम गुण न सिर्फ– उन समस्त सहयोगियों और यात्रियों के लिए प्रेरणास्पद हैं बल्कि समस्त पाठक तत्काल उस कप्तान से अपना तादात्म स्थापित कर लेता है यह गुण मानव का सच्चा वरदान है– इसे दिल या दिमाग की शक्ति कहें या कुछ और ! इस एक गुण के कारण मानव एक फेंटेंसी प्रधान प्राणी हो जाता है– एक ऐसा प्राणी जो कल्पना करता है और स्वप्न सी स्थिति में आ जाता है. कहने की आवश्यकता नहीं कि कथाएं– खासकर शब्दों द्वारा रचित– यहॉ व्यक्ति की कल्पना को ऊॅचाई देती हैं विस्तार करती हैं. गहरी और अनंत ऊॅचाई से रू–ब–रू कराती हैं.

दुनिया के तमाम साहित्य खासकर लोककथाएं अपने पाठकों को एक अद्भुत दुनिया से परिचित कराती हैं. नायकों के समक्ष ऐसी–ऐसी चुनौतियॉ पेश की जाती हैं (खलनायकों एवं परिस्थितिजन्य) जिसकी कल्पना साधारण मस्तिष्क से परे होती हैं. पाठक सीधे अपने नायक के साथ स्थापित होने के कारण सिर्फ एक पाठक भर नहीं रह जाता, वह नायक की तरह सोचने और जीने लग जाता है. कहने का अर्थ ये कि कथाएं महान् चरित्रों के माध्यम से पाठकों के हृदय में उतर आती हैं और जीवन संग्राम में वही कथा कहानियों का पाठक अपना एक ऐसा आभा–मंडल का निर्माण करता है जो नायकत्व लिए होता है. जीवन की चुनौतियॉ उसे परेशान नहीं करती. यह सही है कि अलग–अलग लोगों के लिए इस आभा–मंडल की सघनता अलग–अलग होगी, मगर असर तो होगा. सोचा जा सकता है कि जिस बच्चे या किशोर को कथा–कहानियों से वंचित रखा जाए तो उसका विकास किस रूप में होगा ?

यहॉ यह सवाल उठाया जा सकता है कि दुनिया भर में बहुत सारे लोग हैं जो अशिक्षित हैं– वे कथा या साहित्य से बहुत दूर हैं– क्या उनके मस्तिष्क का विस्तार हो पाता है ? और किस दिशा में ? सवाल शोध की मांग करता है मगर हर संस्कृति में वाचिक परंपरा है और हर समाज का अपना नायक होता आया है. लोग अपने नायकों का किस्सा–लगभग विचित्र किस्सा सुनते–सुनाते आए हैं. मनुष्य 'फेंटेसी' के बगैर मनुष्य नहीं रह पाएगा. कल्पना शक्ति उसका प्रधान गुण है. मनुष्य होता तो दो–हाथ–पांव वाला मगर यह उसकी मानसिक/आत्मिक आभा है जो उसे विलक्षण बनाती है.

अगर बच्चों या किशोर (या प्रौढ़ भी) की इस मानसिक विलक्षणता को 'पॉक' न किया जाए, इस शक्ति को सार्थक दिशा न दी जाए तो क्या होगा?

ऐसा नहीं लगता कि आज जितनी आवश्यकता हमारे पुराने मिथकीय नायकों को पुनः परिभाषित, पुनः चित्रांकित करने की न केवल आवश्यकता है बल्कि नये नायकों का सृजन भी उतना ही चुनौती भरा है. हम आज अपने युग का सामना किस तरह करें ? क्या टीवी में सर पीटते, माथा फोड़ते, नेताओं को देखकर या मुंछ मुड़ाते या बाजू की मछलियॉ दिखलाते मुम्बइया हीरो को अपना आदर्श बनाकर ! हमारा रोल–मॉडल कौन हो ?

हर युग की अपनी चुनौतियॉ होती हैं. हमारे समक्ष हमारे मनुष्य होने का ही संकट हैं. प्रतीत होता है वर्तमान पीढ़ी ने कथा–कहानियॉ पढ़ना ही छोड़ दिया है, या वैसी रचना पढ़ रहा है जहॉ दाल–बाटी नहीं पॉपकार्न सरीखा है चबाया नहीं कि हजम!

नायक तो हममें से कोई निकल आएगा– क्या वर्तमान पीढ़ी उसका स्वागत करेगी ? इस प्रश्न को हम इस तरह भी पूछ सकते हैं, कि क्या यह पीढ़ी कार, फ्लैट, कॉरपोरेट की आलीशान नौकरी, बैंक बैलेंस की कल्पना (नींद) से जाग पाएगी, हम उन्हें जगा पाएंगे और बता सकेंगे कि मनुष्य होने का क्या अर्थ हैं?

फिलहाल, हमने अपना कदम बढ़ा दिया है. हम जानते हैं इस राह में पड़ाव कहीं नहीं हैं हमें बस चलना है.

बस्तर की आवाज

खामोशी छाई है हरपल यहॉ
चारो ओर अंधेरा है.
नक्सलवाद का डंका है बज रहा
अत्याचारियों ने हमें घेरा है.
आवाज भी उठ–उठकर थम गई
न जाने किन–किन के हाथों में मैल है
जिंदगी जिया करते थे शांति से
वही आज ले गई जेल है.
सो गई है मेरी भी बेटी
पर आवाज आज भी कम न हुई
खो गये हैं रास्ते जहॉ
वहॉ इनकी खिड़की है खुल गई.
रोया करते हैं परिस्थितयों को लेकर
पर सन्नाटा थमा हुआ है
कुछ करना चाहें भी तो यहॉ
पैर यहीं थमा हुआ है.
उस चुप की आवाज में
जैसे सच्चाई की आंधी है
लोग तो हैं बहुत यहॉ
पर कोई नहीं गांधी है.
हर चप्पा–चप्पा छान मारा
हर तरफ हमारे ही साये हैं
हर जगह शरीर के पुर्जे फैले
जैसे बाज ने चुन–चुनकर खाये हैं.
खामोशी का प्रपात यहॉ
तीरथगढ़ जिसे लोग कहते हैं
खतरनाक कांड हो रहे जहॉ वही दरभा घाटी है
जैसे चींटी स्वाद ले लेकर गुड़ को चाटी है.
झर–झर करता चित्रकूट
बहती नदी की धारा है
कुटुमसर की गुफा जहॉ
दर्शनीय और प्यारा है.
रिमझिम बारिश की ओट में
बस्तर भीगता जाता है जब
फुलवारी की बगिया में
हरियाली आती है तब.
चुप रहते हैं सब यहॉ
पर दिल में उठती आवाज है
लाना चाहते हैं बहुत कुछ सामने
ये यहॉ के लोगों का आगाज़ है.
संस्कृति है यहॉ की निराली
फैली हर जाति की ख्याति है
जिनके मन के भावों को उकेरने आया है जो
उसी का नाम 'बस्तर पाति' है

कु. पूजा देवांगन
शा. इंजीनियरिंग महाविद्यालय
जगदलपुर छ.ग. मो.–07828349711

शबनमी अहसास

ओस से भरकर छलकती
आसमॉ की प्यास
दूर बिखरा हवा में
शबनमी अहसास.
पर्वतों की धूप जाने
सो रही है भोर
छॉव छुपकर ताकती है
फुनगियों की ओर.
प्रीति का श्रृंगार फैला
धड़कनों के द्वार
रेशमी अभिसार जागा
स्पंदनों के पार.
सिहरनों के गांव ठहरा
भीगता मधुमास.

दुख दुसरों के

दुनिया के फरेब से
अनजान नहीं हैं हम,
कोई माने या न माने
बेईमान नहीं हैं हम,
यह बात अलग है
दुखों से भर जाता है दिल,
नये मंसूबे देखने दुनिया के
फिर संभल जाता है दिल,
दुख दूसरों के
भुलाये नहीं भूलते,
काफ़िले से बिछड़े हुये को
बुलाना नहीं भूलते.

कु. सुचिता झा
बी.ए. फायनल
दंतेश्वरी महाविद्यालय
जगदलपुर छ.ग.

ग़ज़ल

ग़ज़ल–1

वक्त अंधेरे में देखने वाला नहीं होता,
शहर वतन में क्या–क्या नहीं होता.
सुबहो–शाम ये मायूसी नज़र आती है,
जिसे न समझा वो तो अपना नहीं होता.
करीब़ उनके अभी नहीं है कोई साथ,
गमे–वक्त पे कोई किसी का नहीं होता.
कहने को अपना ये प्यारा सा रिश्ता है,
तुमसे दूर कोई यूं अकेला नहीं होता.
कभी ये हाले–दिल रूलाता बहुत है,
दिल तो वही है जो कभी छोटा नहीं होता.
तुम बिन बहार बज़्में गुलिस्तां में है,
सुबह उजाले में चांद सितारा नहीं होता.

ग़ज़ल–2

कैसे कहूं उनसे ये वक्त गुज़र गया,
फरेबे इश्क में जमाना संवर गया है.
पास रहकर दूरियां देखी है हमने,
फूलों पे कतरा–ए–शबनम बिखर गया है.
चमक रहे हैं सितारे यूं अलग–अलग,
वहीं चांद सा टुकड़ा निखर गया है.
एक दिया हाथ पे तुमने क्यों रखा यहां,
ख्वाब देखा बुझता हुआ बिखर गया है.
उस महफिल में अहसास हुआ मुझे,
दिल का प्यार अमानत में ठहर गया है.
वो तो उदास है आलम–ए–बहार में इतना
हमराह नहीं कोई दिल से गुज़र गया है.

रूबाई

फूलों के सोहबत में नज़र आती हैं कलियां
चमन से गुजर कर खिल आती हैं कलियां.
फूलों के करीब भौंरे ने रखा अपना कदम,
खिले फूलों के संग निखर आती हैं कलियां.

ग़ज़ल–3

जहां रहते हो तुम कुछ याद नहीं आता,
ये है शहर अंजाना कुछ याद नहीं आता.
वक्त हमने गुज़ारा अब यहां इतना,
तुम्हें देखकर यहां कुछ याद नहीं आता.
करवटों में बदला ये वक्त इतना,
रात कैसे गुज़री है कुछ याद नहीं आता.
सुनाती है ये आंखें सवाल बस इतना,
है कौन हमसे ख़फा कुछ याद नहीं आता.
चलो उन फासलों के साथ चलें इतना,
अहसास तनहाई में कुछ याद नहीं आता.
उन गुलों में ऐ बहार मेरा दिल है इतना,
गुंचाओं में चमन था कुछ याद नहीं आता.

शमीम बहार,
अप्सरा लॉज के पास,
सदरवार्ड, जगदलपुर, छ.ग.
मों.–07587356655

बातचीत

बस्तर क्षेत्र की साहित्यिक उपलब्धि इस क्षेत्र के लिये सम्मान का विषय होने के साथ ही साथ राज्य और देश के लिये भी गौरव की बात है. यहॉ की फिज़ाओं में घुली शक्ति ही है जो इन साहित्यकारों के लिये संजीवनी बूटी बन गई. इस शक्ति ने ही लालाजी जैसे मनीषी को बनाया और शानी जैसे कहानीकार, उपन्यासकार को भी बनाया. इसी साहित्य की माला के एक मोती हैं जनाब रऊफ परवेज़ साहब. आदिम क्षेत्र जगदलपुर में आने के बाद यहीं के हो कर रह गये. यहॉ की हवाओं को सांसों मे बसाया और अपना साहित्य संसार रचाया. आपने ग़ज़लों के अलावा नज़्म, रूबाई, लघुकथा और बड़ी कहानी लिखने में भी ध्यान लगाया. अपना साहित्य–धन सभी विधाओं से समृद्ध किया है.इनकी ग़ज़लों ने सारे देश में अपनी छाप छोड़ी है. आज तो कंप्यूटर का जमाना है, आपने तो कागज क़लम के जमाने में भी बड़ी मेहनत की. इस पिछड़े कहलाने वाले क्षेत्र को साहित्य–धन से भर दिया. आपकी रचनायें देश की अनेक साहित्यिक पत्रिका में स्थान पा चुकी हैं. आपका नाम परिचय का मोहताज़ नहीं है. आपका सरल स्वाभाव और सहयोगी भाव हर किसी को अपना बनाने की सामर्थ्य रखता है. आइये इनसे कुछ विषयों के सवाल पूछें और जानें कि इनकी क्या सोच है वर्तमान के संबंध में.

सनत जैन–आपने लेखन कब से शुरू किया इस पर प्रकाश डालें. कहते हैं शेरो शायरी प्यार मोहब्बत की उपज है, क्या यह सच है ? इस पर यदि विशेष घटना जुड़ी हो तो बतायें.–

रऊफ साहब–मैं स्कूल में पढ़ता था. प्राईमरी से मेरी शिक्षा उर्दू में हुई. तत्पश्चात् हाईस्कूल तक और उसके बाद की सम्पूर्ण शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से हुई.

जब मैं रायपुर में हाई स्कूल में दसवीं का छात्र था, जाने अनजाने कुछ लिखने का एहसास हुआ. मैंने कलम उठाया, लिखना शुरू किया और उर्दू में एक अफ़साना लिख डाला. बेमन से उस समय की दिल्ली से निकलने वाली मैगज़ीन मासिक 'कामयाब' को भेज दिया. वह अफ़साना उस माहनामें में प्रकाशित हो गया जिस पर मुझे सुखद आश्चर्य भी हुआ था.

उसके बाद कॉलेज के जमाने में मैंने दो तीन कहानियाँ और लिखीं जो प्रकाशित भी हो गईं लेकिन मन के भीतर जो बैचेनी सी थी वह तब समझ आई जब मुझे शेर कहने की तहरीक हुई और मैने ग़ज़ल कहना शुरू किया.

1958 में मेरी पहली ग़ज़ल माहनामा 'बानो', दिल्ली उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुई जिसने मेरी हौसला अफ़जाई की और मैं पूरे उत्साह के साथ शेरो फ़न के मैदान का शहसवार हो गया. उस वक्त तक न मेरा कोई उस्ताद था, न ही किसी ने मेरी राहनुमाई की थी. शेरो शायरी प्यार मोहब्बत की उपज है, इसे मै सही मानता हूं. जब मन शिद्दत से महसूस करता है तो मैं कहता हूं–

थी तसव्वर में एक शहज़ादी
जिसकी यादों के खिल रहे थे कंवल
मैंने लफ़्ज़ों के चुन लिये मोती
बन गई इक बड़ी हसीन ग़ज़ल.

अब इस मुक्तक में आप के प्रश्न का उत्तर साफ़ नज़र आ रहा है. आप विशेष घटना की बात पूछते हैं तो बता दूं कि मेरे जज़बात में हलचल हुई थी और मैंने पूरी एक 'नज़्म' 'अपनी नौख़ेज मोहब्बत की कहानी है यह' सिर्फ़ पंद्रह मिनट में कह डाली थी जिसका अंतिम पद है–

'कितना आहिस्ता ख़रामी से नदी का पानी
मंचले गहरे समुन्दर में चला जाता है
तेरी हस्ती मेरी हस्ती में समा जाता है'

सनत जैन–आपको ग़ज़ल और शायरी में महारत है इसके अलावा आपने और किस विधा पर लिखा है ?.–

रऊफ साहब–मेरे लिये आपने कहा है–'आपको ग़ज़ल और शायरी में महारत है' इस बन्दा नवाज़ी के लिये मैं शुक्रगुज़ार हूं. साथ ही यह बात साफ़ कर दूं कि इल्म, शेरो फन के समुन्दरी साहिल पर मेरी हैसियत उस बच्चे की तरह है जो रेत पर

बैठा सीप चुन रहा है, अभी तो उसे मौजों से खेलते हुये गोते लगाकर समुन्दर पार करना है.
शेरो शायरी में एक खुला मैदान है, मैंने ग़ज़लों के अलावा 'नज़मों', 'आज़ाद नज़मों', 'रूबाई', 'क़तात', 'नात गोई' पर भी अपने ज़ज़्बात को ज़बान दी है, रूपक और लेख लिखे हैं.

सनत जैन–बस्तर संभाग में आपके अलावा और कौन कौन शायरी और ग़ज़ल के क्षेत्र में काम कर चुके हैं ? उनमें से किस किस की शायरी ने आपको प्रभावित किया ?–

रऊफ साहब–बस्तर संभाग में शायरी और ग़ज़ल के क्षेत्र में मरहूम नूर क़ाजीपुरी, कफ़ीन फ़तेहपुरी, हबीब राहत हुबाब, शफ़ीक़ रायपुरी, नूरद्दीन नूर जगदलपुरी, याकूब नसीम, खुदेजा ख़ान, शबाना अली आदि ने अदब को अपनी ख़िदमात से नवाज़ा है. जहाँ तक कलाम से प्रभावित होने की बात हैं, मेरा कहना है कि ''जो ज़र्रा जिस जगह है वहीं आफ़ताब है.

सनत जैन–आपकी शायरी के विषय ज्यादातर क्या है– प्यार, जीवन या फिर और कुछ ?

रऊफ साहब–शायरी के विषय की बात पर बता दूं कि शुरू में मैंने तमाम तर रूमानी शायरी की है, साथ ही ग़मेजानाँ के साथ ग़मे रोज़गार से भी दो चार होना पड़ा. समय समय पर जैसे जज़बात में तहरीक हुई मैंने शेर कहे.
मैंने कहा

'नर्म बिस्तर पे जब रात सोती रहे
और छा जाये हर सिम्त इक ख़ामशी
एक हलचल सी हो बहरे जज़बात में
शायरी के लिये और क्या चाहिये'

या– दर्द बन कर जो छाये वही साज़ है
सोज़े दिल बनके उठे वो आवाज़ है
झूम जायें फ़िजायें वो नग़मा सुना
मुझको परवेज़ तारों ने आवाज़ दी

सनत जैन–अदम गौण्डवी की शायरी में एक नये प्रकार का अंदाज़ था क्या यह भी शेरो शायरी का रूप है ?–

रऊफ साहब–आप अदम गोण्डवी की शायरी के बारे में पूछते हैं तो सुने, अदम गौण्डवी ज़मीन का शायर है. उसने जीवन में जो भी देखा, भोगा, पाया, खोया सब को अपने शेरों में सुमो दिया. अदम गौण्डवी को शेर कहने का प्रभावशाली अंदाज़ है जो शेरो शायरी की अज़मत व शान को बुलंदो बाला करता है कभी कभी लगता है कि अदम ने अपनी अलग पहचान बना ली है.

सनत जैन–आपने कहानी या अन्य विधा पर हाथ नहीं आज़माया ? आपकी नजर में ग़ज़ल अपने भीतर की भावनाओं को व्यक्त करने का सबसे सही ज़रिया है ?–

रऊफ साहब–मैंने मिनी अफ़सानें या लघुकथा पर भी क़लम चलाया है. हालाते ज़माना और गर्दिशे दौरा ने इतनी मोहलत नहीं दी कि तवील अफ़सानें लिखूं वरना मेरे कलम में अभी बहोत भूख बाक़ी है. कभी सोचता हूं कि सब कुछ छोड़कर सिर्फ़ लिखता रहूं.

सनत जैन–अपने प्रकाशित संग्रहों के संबंध में बताये ?–

रऊफ साहब–जैसा कि मैंने बतलाया है ग़मे रोज़गार ने संग्रहों के प्रकाशन की मोहलत नहीं दी. उर्दू में मेरा पहला दीवान 'कौसे कुज़ह' (इन्द्रधनुष) उर्दू अकादमी, म.प्र. भोपाल से 1997 में प्रकाशित हुआ. दूसरा संग्रह 'शीशों के दरीचे,' विश्व भारती प्रकाशन से 2003 में प्रकाशित हुआ. अभी तीन और संग्रह प्रकाशित होने को हैं.

सनत जैन–आपकी रचनायें किन किन पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं ?–

रऊफ साहब–मेरी रचनायें देश की उर्दू एवं हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं. उर्दू पत्रिकाओं में 'शायर' बम्बई, 'गुलबन,' लखनऊ, 'नयादौर' लखनऊ, 'सदार उर्दू' भोपाल, 'चश्म ए उर्दू' रायपुर आदि. हिन्दी में ''शेष'' जोधपुर, 'गोलकोन्डा दर्पण,' हैदराबाद, 'रंग चकल्लस' मुम्बई 'समकालीन भारतीय साहित्य' नई दिल्ली आदि.

सनत जैन–वर्तमान समय में आपको इस क्षेत्र से ग़ज़ल के लिए कोई बड़ी उम्मीद है और किस ग़ज़लकार से कुछ ज्यादा उम्मीद है ?–

रऊफ साहब–वर्तमान समय में शेरों सुख़न का दौर रूक–रूक कर थमा–थमा सा चल रहा है लेकिन मैं निराशावादी

नहीं हूं. नये लिखने वाले जोशीले अन्दाज़ में सामने आ नहीं रहे हैं. ऐसे माहौल में फ़िलहाल किसी भी ग़ज़लगो का ख़ास तौर पर उल्लेख नहीं किया जा सकता.

सनत जैन–ग़ज़ल क्या उर्दू में ही लिखी जा सकती है या फिर ग़ज़ल लिखने के लिए उर्दू भाषा सहायक सिद्ध होती है ? क्योंकि उर्दू भाषा में बड़े और लंबे वाक्यों को छोटे शब्द में कहा जा सकता है ?–

रऊफ साहब–ग़ज़ल की ज़ेबाइश तो उर्दू के चमन में ही हुई है. ग़ज़ल की एक तहज़ीब है, एक खुशनुमा माहौल है जिसमें इसकी परवरिश हो रही है और यह क़दम ब कदम परवान चढ़ रही है. अब तो मुल्क में हिन्दी ग़ज़ल के साथ अनेक भाषाओं में ग़ज़ल पर आज़माइश हो रही है लेकिन सभी की सूत्रधार उर्दू ग़ज़ल ही है. ऐसे प्रयास जो अवाम में मक़बूलियत हासिल कर रहे हों उनकी प्रशंसा की जानी चाहिये.

सनत जैन–इस क्षेत्र के रचनाकारों के लिए आपका क्या संदेश हो सकता है ?–

रऊफ साहब–क्षेत्र के रचनाकारों को मैं कहना चाहूंगा कि चाहे वह किसी भी वर्ग के हों, किसी भी स्कूल के हों उर्दू ज़रूर सीखें क्योंकि उर्दू में जो मिठास है, घुलावट है वह हिन्दी के वाक्यों में भी चाश्नी का काम करती है और रचना में निखार पैदा हो जाता है वैसे भी दोनों बहनों की तरह ही हैं.

नये रचनाकारों को स्कूल और कॉलेज की चहारदीवारी में खोजना होगा ताकि वह साहित्य एवं अदब के मंच पर जलवा अफ़रोज़ होकर उसकी इज्ज़त, उसके वक़ार को ऊँचा कर सकें और समाज में भी क़ाबिलेक़द्र मुक़ाम हासिल कर सकें. जो साहित्य के मैदान में प्रवेश कर चुके हैं उन्हें मेहतन और लगन के साथ खूब मश्क़ करने की अर्थात पढ़ने लिखने की ज़रूरत है.

सनत जैन–बस्तर पाति' के लिए आपका क्या संदेश है ? इस पत्रिका की कमियों पर प्रकाश डालिए. पत्रिका में क्या सुधार आवश्यक है–

रऊफ साहब–'बस्तर पाति' एक मुकम्मल प्रोग्राम के तहत आपने शुरू किया है तो पूरे हौसले के साथ हर वर्ग का सहयोग हासिल करें, उसे आकर्षक बनाने की कोशिश करें, महिलाओं, बच्चों, के लिये सामग्री दें. हर अंक में बस्तर की माटी की गंध आवश्यक है जिससे बाहरी दुनिया में इस पत्रिका के माध्यम से बस्तर की पहचान बने. लोग महसूस करें कि बस्तर आदिवासियों की भारी आबादी वाला क्षेत्र होने के साथ साहित्य के क्षेत्र में भी दमख़म रखता है.

महावीर बुक डिपो

स्कूल एवं कॉलेज की सभी पुस्तकें, समस्त प्रकार की पेन, एवं विभिन्न व्हेरायटीयों की कापियां थोक दर पर प्राप्त करें.....

स्कूलों में लगने वाली शैक्षणिक सामग्री उचित दर पर प्राप्त करें–ब्लैक बोर्ड, टाटपट्टी, विभिन्न कार्यालयिन फार्मेट आदि.....

विभिन्न गिफ्ट आयटम, ग्रिटिंग कार्डस, खेल सामग्री–बेट, बॉल, बेडमिंटन, फुटबॉल, चेस आदि.....

धार्मिक पुस्तकें, उपन्यास, कहानी पुस्तकें, ज्योतिष–वास्तु पुस्तकें, पत्र–पत्रिकायें, किचन संबंधी पुस्तकें आदि.....

महारानी लक्ष्मीबाई स्कूल के सामने, हाई स्कूल रोड, जगदलपुर, बस्तर छ.ग.